ISSN : 2321-3922
अक्टूबर– 2017
BIHHIN05394
वर्ष – 3 अंक–10

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

www.susambhavya.com

सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका

व्यंग्य एवं समीक्षा विशेषांक

सुसंभाव्य

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)

अक्टूबर-दिसम्बर-2017

संस्थापक–सह–प्रधान संपादक
श्री दयानन्द जायसवाल

संयोजक
डॉ. विजय कुमार सिंह

संरक्षक
श्रीमती प्रतिभा सिन्हा

सम्पादक मंडल
डॉ. गिरिजा शंकर मोदी
डॉ. अश्विनी

अतिथि सम्पादक
डॉ. एम.एम. चन्द्रा

संस्थापक सदस्य
श्रीमती छाया पाण्डेय
श्रीमती संयुक्ता गुप्ता
डॉ. राम किशोर शर्मा

स्वत्वाधिकारी व प्रकाशक : श्री दयानन्द जायसवाल
संपादन, संचालन, प्रबंधन एवं समस्त
व्यवस्था अवैतनिक एवं अव्यावसायिक ।
रचनाओं के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र
भागलपुर।

ISSN - 2321-3922
TITLE CODE : BIHHIN05394
वर्ष–3, अंक–10

व्यंग्य एवं समीक्षा विशेषांक

''व्यंग्य मानव चेतना को झकझोर
कर रख देता है, विद्रूप को सामने रख देता है,
उसकी व्यवस्था से उत्पन्न सड़ांध की ओर
स्पष्ट संकेत करता है और उसके परिवर्तन
की ओर शुरूआत करता है,
तो उसे सफल व्यंग्य माना जाता है।''

– हरिशंकर परसाई

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303, 8210079809
वेबसाईट : www.susambhavya.com
ई–मेल : dnj.sambhavya@gmail.com

ISSN - 2321-3922
TITLE CODE : BIHHIN05394
वर्ष–3, अंक–10

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

वेबसाईट : www.susambhavya.com

आमंत्रण

'सुसंभाव्य' अंतराष्ट्रीय स्तर की पूर्णत: अमूल्य हिंदी त्रैमासिक है। वर्तमान समय में विश्व के 39 देशों के पाठक सहित भारत के 92 शहरों के सहृदयों का स्नेह इस पत्रिका को प्राप्त है।

इसका ई–संस्करण विश्वग्राम के सभी सुधी पाठकों एवं स्नेहीजन के लिए www.susambhavya.com पर सहजता के साथ सुलभ है। मुद्रित संस्करण यथासंभव रचनाकारों, हिंदी के लिए समर्पित संस्था और संस्थानों को उपलब्ध कराया जाता है।

श्रेष्ठ चिंतन को सहज–सरल अभिव्यक्ति के माध्यम से जब कोई व्यक्ति सार्वभौम होकर जन–गण में व्याप्त हो जाता है तब वह व्यक्ति से व्यक्तित्व और व्यक्तित्व से संस्थान बन जाता है। ऐसे महान विभूतियों से आग्रह है कि जनवरी–2018 अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक, नवीनतम एवं प्रतिनिधि रनचाएं अपने पत्राचार–पता के साथ मेल, कोरियर या डाक से सम्पर्क पते पर भेजें।

आइये सब मिलकर सामाजिक सरोकार से संबंधित सार्वभौम, सार्वजनीन एवं श्रेष्ठ साहित्य के माध्यम से धर्म–मज़हब, जाति, लिंग, वर्ण, वर्ग और नस्ल–भेद की दीवार हँटा दें और सिर्फ इंसान बनें तथा उत्तम ज्ञान एवं श्रेष्ठ आचरण से स्वयं का परिष्कार कर विश्वग्राम का सौभाग्य बनें।

रचनाएं भेजें :–
E-mail : dnj.sambhavya@gmail.com

संपादक
सुसंभाव्य हिन्दी त्रैमासिक

सुसंभाव्य

अक्टूबर–दिसम्बर 2017

ISSN - 2321-3922
TITLE CODE : BIHHIN05394

अनुक्रम

पुरोवाक् संस्थापक की कलम से	दयानन्द जायसवाल	05
अतिथि संपादकीय / समकालीन व्यंग्य आलोचना का स्वरूप	एम.एम.चन्द्रा	06
विचार व्यंग्य की आधारशिला	सुनील सक्सेना	08
व्यंग्य काव्य परंपरा और समकालीन परिदृश्य	भुवनेश्वर उपाध्याय	09
व्ययंग्य विसंगतियों के तिलस्म को तोड़ता है	कंचन शर्मा	11
अपने विधान के तटबंध स्वयं गढ़ती व्यंग्य विधा	राजेश सेन	13
माया महा ठगनी हम जानी	बाल मुकुन्द ओझा	14
व्यंग्य का स्वरूप	सुनील जैन राही	15
दूर के इतिहासकार	अनुराग शर्मा	16
मदारी और बंदर	मोनिका अग्रवाल	17
अंगूठा छाप भयो सब जग जानी	प्रो० डॉ० अजय जोशी	18
व्यंग्य मूल रूप से आलोचना का काम करता है	के. के. अस्थाना	19
बतियाने का हुनर	मीना पाण्डेय	20
मेरा कसूर क्या है	संजय वर्मा दृष्टि	21
झूठ बराबर तप नहीं	गोविन्द शर्मा	22
गुजारिश/सुसंभाव्य	डॉ. अनुज प्रभात	23
दुमदार जी की दुम	सुशांत सुप्रिय	24
द प्राईस ऑफ लव	सुभाष चन्द्र झा	27
बत्ती गुल	डॉ. दलजीत कौर	33
शिक्षा बिक्री केन्द्र	संजीव निगम	34
रावण का दशहरा	प्रहलाद श्रीमाली	35
वैश्य साहित्यकार सम्मेलन का रंगारंग कार्यक्रम	मनोज कुमार झा	36
रामराज्य का स्तुति गान	अक्षय नेमा मेख	38
हम भी बने मुख्य वक्ता	सुरेखा शर्मा	39
दीमक : शशि कान्त 'शशि'	डॉ. सुरेश कान्त	41
आ बैल मुझे मार	सुशील यादव	43
डंडे की संस्कृति/आवाज गुंजती रहेगी / खबर	डॉ. गिरिजा शंकर मोदी	44
चुनौती	लाल माहेश्वरी शंकर	45
६६६६	६६६	46
तेरे आने से पहले तेरे जाने के बाद	विनय कुमार पाठक	47
मुद्दा संकट	डॉ. पंकत साहा	48
६६६	६६६६	48

जबाबदेही

तुमने अन्याय के खिलाफ
बोलना बन्द कर दिया
समाज हिंसक हो गया,

और एक भयभीत समाज में
तुम हो गये
हिंसा के पोषक,

और अब वह
छिपी दबी हिंसा
एक वट वृक्ष है
और तुम हो उसके जरामूल
और वटवृक्ष के तले उगा है
एक नपुंसक बौना समाज
अनुबंध है मात्र
सांस लेते रहने का
इसका जवावदेह कौन है
जवाब दोगे ?

– गिरिजा शंकर मोदी

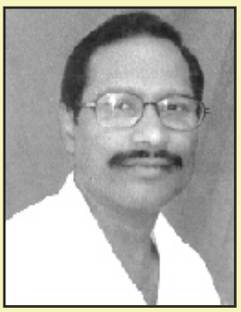

पुरोवाक्

दयानन्द जायसवाल

संस्थापक की कलम से

हिन्दी साहित्य के इतिहास और परम्परा को जानने वाले लोगों में साहित्य की मनोरंजकता, साहित्य का सामाजिक महत्व, साहित्य की उपयोगिता, तथा सूक्ष्म दृष्टि से सम्पूर्ण साहित्यिक दर्शन को समझने की कोशिश रहती है, जिसमें यह भावना प्रबल होती है, उसे प्रकट करने का सामर्थ्य भी होता है, वही साहित्य का उपासक भी बन जाता है। वह मनुष्य में, समाज में, प्रकृति में, कुछ भी असुन्दर, असौम्य, असत्य को देखते ही असहज हो जाता है और अपनी सौन्दर्य भावना से व्यक्ति और समाज में सुरूचि पूर्ण जागृति डाल देने के लिए व्याकुल हो जाता है। साहित्यकार का तो वर्ग–दृष्टिबिन्दु उत्पीड़ित और शोषित जन समूह में खड़ा होना ही चाहिए। उसके हृदय को स्पन्दित कर उसमें न्यायवृत्ति जगानी ही चाहिए। साहित्य केवल मन बहलाने, आँसू बहाने या मनोरंजन के लिए नहीं है, बल्कि सामाजिक और नैतिक महत्व के क्षेत्र में सम्मिलित है कभी आप देखते होंगे मानव जीवन में बहुत सी कच्ची सामग्रियों को काट–छाँट कर बड़ी कलात्मक ढंग से सुन्दर और सत्य बाते लोगों के हृदय की गहराई तक मनोवैज्ञानिक स्वरूप में व्यंग्यकार आसानी से पहुँचा देते हैं, तो महसूस करना पड़ता है कि व्यंग्य भी अपने आप में एक स्वरूप है, प्रयोजन है, एक पृष्ठभूमि है, एक परम्परा है, वह एक तत्व है, जो उपयोगिता पर प्रकाश डालने वाली विधा कही जाती है।

व्यंग्य लेखन एक जरूरी माध्यम के रूप में संवेदनात्मक बहुआयामी विस्तार है। आज इसकी लोकप्रियता और मांग अपने चरम पर है। यह विचार से पैदा भी होता है और विचार को पैदा भी करता है। इसका मूल श्रोत हजारों बरस पुरानी संस्कृति, सभ्यता और जीवन दर्शन में देखा जा सकता है। यह आनन्द की अनुभूति के लिए पैदा हुआ हीं है और समाज के निर्माण में भी अपनी भूमिका निभाता है। संस्कृत, पालि, अपभ्रंश साहित्य में हास्यव्यंग्य के हजारों उदाहरण मिल सकते हैं। कहीं ये उक्तियाँ गहरे उतरकर चोट करती हैं, तो कहीं गुद–गुदाकर पाठकों और दर्शकों को हंसने पर मजबूर कर देती हैं।

जनाब अकबर इलाहाबादी ब्रिटिश अदालत में मुंसिफ थे लेकिन वे अपने व्यंग्य के तीरों से ऐसा गहरा घाव करते थे कि पढ़ने वाला एक बार उसे पढ़कर हजारों बार उसपर सोचने को मजबूर हो जाता था। लॉर्ड मेकाले की शिक्षा पद्धति का पोस्टमार्टम जिस बेवाकी से अकबर साहब ने किया उसकी गहरायी तक आज के व्यंग्यकार सोच भी नहीं सकते। यह समाज की विसंगतियों का आईना है।

हास और व्यंग्य का आधार प्रीति पर होता है, न कि द्वेष पर, अतएव यदि किसी की प्रकृति, प्रवृत्ति, स्वभाव, आचार आदि की विकृति पर कटाक्ष भी करना होता है, तो उसकी तह में जलन अथवा नीचा दिखाने की भावना न होती है। व्यंग्य के तरकशों से निकले तीरों का इस्तेमाल तो कबीर और सूर से लेकर समकालीन कहानीकार और कवि सब करते आए हैं। आज इन सबके बावजूद रचनाकार, साहित्यकार, कवि सब हास्य–व्यंग्य को स्वतंत्र विधा के तौर पर व्यंग्य को चिह्नित नहीं करना चाहते, पर अपनी रचनाओं में व्यंग्य का बेमिशाल पुट भर देते हैं। आलोचनात्मक दृष्टि से यह रचनाकारों के लिए एक बड़ी चुनौती है कि "गुड़ खाये और गुल–गुले से परहेज।"

व्यंग्य कोई अलग किस्म की लेखनी नहीं है और ना ही व्यंग्यकार को ही साहित्य की मुख्य धारा से अलग खड़ा करके उसका मूल्यांकन किया जाना चाहिए। व्यंग्य भी एक साहित्यिक सृजन की कला है और व्यंग्यकार भी एक मुक्कमल साहित्यकार है। परन्तु व्यंग्यकार को भी खास ख्याल रखना होगा कि इनके व्यंग्य–वाण किसी वंचित को चोटिल न करते हों, यदि आपका व्यंग्य किसी वंचित पर प्रहार करता है, तो व्यंग्य की प्रासंगिकता ही मर जाती हैं।

इसकी खुशबू इतनी भीनी होती है कि जरा ध्यान और कहीं गया आपका, तो आपको यह खुशबू महसूस ही नहीं होगी। कभी–कभी अमृत की तलाश में निकलते समय हम अपने पीछे जो कुछ चीजों को अमर कर जाते हैं। यह वही है व्यंग्य।

बस अपने हिस्से के वसंत को अपने पास बाँध लेना चाहिए, वरना अपने आप को ठगा हुआ–सा महसूस करेंगे। बंधुत्व, स्वाधीनता और समानता के वैश्विक मूल्यों पर आधारित यह अंक सादर समर्पित।

अतिथि सम्पादकीय

व्यंग्य मूल्यांकन की समस्या

एम.एम.चन्द्रा
दिल्ली
9953686880

समकालीन व्यंग्य की दुनिया में कई पीढ़ी एक साथ व्यंग्य लेखन में सक्रिय हैं। यह व्यंग्य क्षेत्र के लिए शुभ संकेत है। लेकिन पिछले दिनों देखा गया है कि समकालीन व्यंग्य को लेकर बहुत से व्यंग्यकारों ने नाराजगी जाहिर की है। यहाँ तक कि व्यंग्यकारों को लेकर बहुत ही भद्दी भाषा का प्रयोग किया गया। लेकिन ये मामला एकतरफा नहीं रहा है। बहुत से वरिष्ठ व्यंग्यकारों ने न सिर्फ नई पीढ़ी के लेखकों को लेकर सकारात्मक रुख अपनाया बल्कि आगे बढ़कर सक्षम व्यंग्यकारों को चिन्हित भी किया।

मैं भी व्यक्तिगत तौर पर इस बात का खंडन करता हूँ कि व्यंग्य के लिए यह समय न तो अन्धकार का समय है, न ही चरणवंदन का और न ही भक्तिकाल का रहा है । यही नहीं, इतिहास में भी कभी ऐसा दौर नहीं आया, जहां सिर्फ एक जैसा लेखन हुआ हो। भक्ति काल में भी विद्रोही लेखन हुआ है। अंधेरे के साथ उजला पक्ष भी हमेशा रहा है। फिर इस तरह की बात क्यों हो रही है?व्यंग्य को ऊहापोह की स्थिति का सामना क्यों करना पड़ रहा ?इस क्षेत्र में इतना घमासान क्यों हो रहा है?व्यंग्य की क्लास को लेकर सबसे ज्यादा हाय तौबा है।

व्यंग्य की अपनी अपनी कसौटी है जिन पर नए पुराने व्यंग्यकारों को तौला जा रहा है। यहीं से व्यंग्य में धरपकड़ , मारकाट, मठ-मठाधीशी इत्यादि का शोर गूंजने लगता है। व्यंग्य ही नहीं पूरी दुनिया एक उथल पुथल के दौर से गुजर रही है। दुनिया का शक्ति संतुलन बदल चुका है। राजनीतिक शक्तियां तमाम दावों के बाद भी अपना आधार खो रही हैं। वित्तीय पूंजी अपने मुनाफे के लिए मानवता के सामने बड़े से बड़ा खतरा पैदा कर रही है। बाजार मानवीय सम्बन्धों को मुनाफे के लिए इस्तेमाल कर रहा है। मनुष्य के नैसर्गिक गुण सामाजिकता, सामूहिकता जैसे सामाजिक व्यवहार नित नये तरीकों से खंडित हो रहे हैं। लाख कोशिशों के बाद भी मनुष्य अलगाव, कुंठा, घृणा, ईर्ष्या, लोभ व लालच का शिकार हो रहा है। व्यंग्य के सामने नई तरह की चुनौतियां, नए रूप, रंग और ढंग में आ रही है । ऐसे कठिन समय में व्यंग्य के सामने एक से एक बढ़कर चुनौती मुंह बायें खड़ी है। उन्हीं चुनौतियों में से व्यंग्य का मूल्यांकन भी एक बड़ी समस्या के रूप में हमारे सामने आ गयी है।

मुझे ऐसा लगता है कि यदि व्यंग्य मूल्यांकन कोई विधि, पद्धति, तरीका स्पष्ट तौर पर हमारे सामने होता तो शायद कोई भी किसी व्यंग्य को परखने का जोखिम ले लेता। लेकिन व्यंग्य की कोई अधिकारिक मूल्यांकन पद्धति विकसित नहीं हो पाई। जब तक व्यंग्य मूल्यांकन पद्धति विकास नहीं होगी, तब तक ऐसा ही माहौल देखने को मिलता रहेगा। बस हमारे सामने सुखद पहलू यही है कि हमारे पास व्यंग्य की एक समृद्ध विरासत है, जिसके आधार पर इस स्थगित कार्य को समय रहते कर लिया जायेगा। इस अंक के लिए मैं श्री दयानंद जायसवाल जी का तहे दिल से शुक्रिया अदा करता हूँ, जिन्होंने - समीक्षा आलोचना व्यंग्य विशेषांक का कार्यभार मुझे सोंपा।

आलेख

समकालीन व्यंग्य आलोचना का स्वरूप

एम.एम.चन्द्रा, दिल्ली

पिछले दिनों व्यंग्य आलोचना को लेकर मैंने कई बार अपनी बात रखी थी। मुझे लगता है कि इस विषय पर और अधिक चर्चा करने की जरूरत है ताकि कोई निष्कर्ष निकले। इस आलेख में व्यंग्य-मूल्यांकन की चर्चा करेंगे। वैसे तो किसी भी विधा के मूल्यांकन का सवाल एक सैद्धांतिक और व्यावहारिक सवाल है। सैद्धांतिक सवाल बिना मानकों के संभव नहीं। टूल्स या मानक के अभाव में कोई भी कुछ भी अनुमान, आकलन करने के लिए अराजकता का सहारा ले लेता है। और अपने व्यक्तिगत मानकों द्वारा किसी को भी धमकाने, गिराने का भी काम बखूबी हो जाता है।

किसी भी रचना के मूल्यांकन में यदि अंतर्विरोधों की पहचान आसानी से कर ली जाये तो आधी समस्या यहीं खत्म हो जाती है। व्यंग्य में अंतर्विरोधों को देख पाना भी उसी व्यक्ति के लिए आसान होता है, जिसका व्यंग्य के ऐतिहासिक विकास क्रम पर दृढ़ विश्वास हो, जिसे अपने समाज के इतिहास, वर्तमान की संचालक शक्ति का ज्ञान हो। भविष्य का अपना कोई दृष्टकोण हो। तभी वह व्यंग्य के बाह्य और भीतरी अवयवों की पहचान तथा व्यंग्य की मारक क्षमताओं को रेखांकित कर पायेगा।

समकालीन व्यंग्य व्यक्तिगत अनुभववादी और यथार्थवादी व्यंग्य के रूप में आ रहा है। लेखक जैसा समाज देख रहा और अनुभव कर रहा है, उस पृष्ठभूमि को अपने लेखन में प्रयोग कर रहा है। जबकि व्यंग्य यथास्थितिवाद से आगे की महीन और गंभीर विषयवस्तु है। इसी कारण व्यंग्य को तात्कालिक और क्लासिकल व्यंग्य श्रेणी में बाँट दिया जाता है। अब यहाँ सवाल उठता है कि समकालीन मूल्यांकन की कसौटी क्या है?इससे पहले मैं आपके सामने एक उदाहरण देना चाहता हूँ।

हम सभी फिल्में देखते हैं। किसी भी फिल्म का उदाहरण ले लीजिये। उस फिल्म में एक लड़की सड़क पर चिल्लाती हुई भाग रही है। उसके पीछे कुछ गुंडे पड़े हैं। उस सीन के बैकग्राउंड म्यूजिक को आप गौर से सुनना। अपनी जान बचाने के लिए भागती हुई लड़की की आवाज को गंभीरता से सुनना। सीन धीरे-धीरे आगे चलता रहता है, लड़की पर गिद्ध की तरह गुंडे टूट पड़ते हैं। रोचकता, अश्लीलता, उत्सुकता बहुत ही कलात्मक तरीके से दिखाया जाता है। क्या उस सीन को देखकर उन गुंडों के प्रति कोई नफरत पैदा होती है?शायद नहीं .... जबकि वे यथार्थ को दिखाते हैं, जिज्ञासा के साथ... अर्थात यथार्थवादी फिल्मों की तरह यथार्थवादी लेखन भी हमारी संवेदना को मारने का काम करता है। लेकिन व्यंग्य उससे अलग काम करता है ।वह यथास्थिति की जड़ता को तोड़ता है। विसंगतियों पर प्रहार करता है, पाठक की चेतना को उन्नत करता है। विसंगतियों के प्रति नफरत पैदा करता है, समाज की तमाम जड़वादी मान्यताओं और मनुष्य विरोधी प्रवृत्तियों के खिलाफ विद्रोह भी पैदा करता है। उन्नत समाज के निर्माण में अपनी भूमिका निभाता है ।

व्यंग्य चेतना का सबसे उच्चतम स्तर है। व्यंग्यकार कोई जन्मजात नहीं होता, न ही व्यंग्यकार के डीएनए में होता है। जैसा कुछ लोग साबित करने में तुले हैं। यह व्यक्ति की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक चेतना द्वारा निर्मित होती है। इसलिए व्यंग्य उसी के हाथों में सुरक्षित रह सकता है, जिसकी कोई

वैज्ञानिक विश्वदृष्टि हो और जिसके पास दुनिया को देखने का वैज्ञानिक नजरिया हो।

ऐसा भी देखा गया है कि शिल्पगत प्रयोगों को अत्यधिक रूप से रेखांकित कर दिया जाता है। जिसके चलते विषय वस्तु और विचार पक्ष जाने अनजाने समाप्त हो जाती है। कुछ रचनाकार रचना के आन्तरिक सौंदर्य द्वारा शिल्प का पैदा होने में विश्वास करते हैं । दोनों ही प्रकार के रचनाकार हमारे व्यंग्य समाज में मौजूद हैं। घर के हिसाब से लोगों को एडजस्ट किया जाये या लोगों के हिसाब से घर बनाया जाये। सभी अपने अपने फन में माहिर लोग यह प्रक्रिया अपनाते रहते हैं और एक दूसरे को कोसते भी रहते हैं। यह रूपवादी आलोचना का एक विकृत रूप है।

मूल्यांकन करते समय पाठक के लिए चौंकाने वाला तथ्य या विषय वस्तु को खंड-खंड प्रस्तुत करने पद्धति भी व्यंग्य के लिए कम खतरनाक नहीं होती। यह अराजक मूल्यांकन पद्धति का श्रेष्ठ उदाहरण है जो किसी विशेष विशेषता को स्थापित करने पर तुली रहती है।

व्यंग्य मूल्यांकन व्यक्ति सापेक्ष नहीं बल्कि दृष्टि और काल सापेक्ष से सम्पूर्णता की तरफ हमेशा आगे बढ़ता है। ऐसा भी देखने में आता है कि बहुत से रचनाकार अपनी व्यंग्य रचना में शिल्प के रूप में फंतासी और प्रतीकों का प्रयोग करते है। इस शैली की अपनी मजबूती और अपनी कमजोरी होती है। जिसे समझना बहुत जरूरी है। कोई रचना कब भाववादी बन जाये और कब यथार्थवादी इसका कभी -कभी पता नहीं चलता है। जिस व्यंग्य में इतिहास, वर्तमान और भविष्य का कोई प्रारूप सामने नहीं होता। यदि रचना फंतासी के ही इर्द गिर्द घूमती नजर आ रही है तो वह उसकी सीमा बन जाती है और यदि फंतासी ने यथार्थ जीवन में ताक-झांक करना शुरू कर दिया तो वही पहलू रचना की ताकत बन जाता है। मेरे कहने का मतलब बस इतना ही है कि फंतासी प्रतीकों का प्रयोग करते समय इतिहास और वर्तमान का ज्ञान होना काफी नहीं है बल्कि भावी भविष्य के स्वप्न का स्वरूप भी स्पष्ट रहता है, जिसमें मनुष्यता को बचाने की आस्था विद्यमान रहती है।एक सही आलोचना पद्धति इस तरह की रचना में छुपे हुए भाववादी, यथार्थवादी और भौतिकवादी रुख को चिन्हित करता है।

अब सवाल उठता है कि व्यंग्यकारों में भिन्न-भिन्न दृष्टियाँ और रुचियाँ स्पष्ट तौर पर दिखाई देती हैं। फिर उनका मूल्यांकन कैसे संभव हो पायेगा। अब हम बात करेंगे कि व्यंग्य रचना का मूल्यांकन करते समय उसकी संरचना को किन मौलिक तत्त्वों से परिभाषित और रेखांकित किया जाना चाहिए। किसी भी रचना की संरचना को मूल रूप से दो भागों में बांट सकते हैं : आधार और अधिरचना । व्यंग्य रचना की अधिरचना के अंतर्गत आने वाला एक उपरी भाग है शिल्प विशेषताएं। वैचारिक पक्ष उसका आधार है। किसी एक तत्त्व के आधार पर किसी भी रचना को न तो स्वीकृत किया जा सकता है न ही अस्वीकृत किया जा सकता है । जब हम व्यंग्य के मूल्यांकन की अवधारणा को मूर्त और अमूर्त रूप से समझने का प्रयास करेंगे तो एक बात का विशेष ध्यान रखना पड़ेगा। व्यंग्य रचना आधार और अधिरचना के अंतर्विरोधों में से किस स्वरूप को रेखांकित कर रहा है। मूल्यांकन में व्यंग्य की अधिरचना और आधार की उपेक्षा करके किसी भी रचना का मूल्यांकन संभव नहीं हो सकता है। दोनों का समग्रता से मूल्यांकन करना पड़ेगा। आपने ऊपर देखा कि पाठकीय, छायावादी, रूपवादी और उत्तर आधुनिक आलोचना पद्धति अब धराशायी हो चुकी हैं। आज नई आलोचना पद्धति के विकास की जरूरत है।

इस विषय पर मैंने अपना वैचारिक और सैद्धांतिक पक्ष आपके सामने रखने की कोशिश की है। तत्त्वों को रेखांकित करना, उनका उद्धरण देकर उसे विमर्श के लिए प्रस्तुत करना अभी बाकी है।कुछ मूलभूत मूल्यांकन पक्षों पर मैं काम कर रहा हूँ जिसका संक्षिप्त परिचय आपके सामने हैं-

पहला : अन्तर्विरोध का सिद्धांत (अन्तर्विरोध विशेषांक वाला आलेख देखे)

दूसरा : त्रि-स्तरीय पक्ष

तकनीकी पक्ष से मेरा मतलब है कि व्यंग्य की विषय वस्तु, भाषा, शिल्प, शैली, विट, आयरनी, कहन, कौशल इत्यादि चिन्हित किया जाता है। यह किसी भी व्यंग्य रचना का प्राथमिक पक्ष होता है। जिसमें समय अनुसार बदलाव संभव हो सकता है, जो परिवर्तनशील है, जिसे विकसित किया जा सकता है। और जिन्हें आसानी से पहचाना जा सकता है।

सांगठनिक पक्ष से मेरा अभिप्राय है कि व्यंग्य की मार कहां तक जाती है?उसका क्षेत्रफल क्या है?व्यंग्य कितनी दूरी तक मार करती है?कितने लोगों को अपनी गिरफ्त में लेती है, किसके पक्ष में बात करती है। एक छोटे से हिस्से को लेकर व्यंग्य किया जाता है या संपूर्णता में। कितनी गहराई और विस्तार लिए हुए सतह तक पहुँचती है। रचना के सरोकार, पक्षधरता भी इसी पक्ष में रेखांकित होंगी।

वैचारिक पक्ष व्यंग्य आलोचना रचना की गहराई, विस्तार उसकी सतह तक की यात्रा तक पाठक को ले जाने का काम करता है। जैसे समुद्र के विस्तार का मूल्यांकन तब तक नहीं हो सकता जब तक की गहराई और उसकी सतह को न समझा जाये। रचना में विचार तत्त्व हमेशा मौजूद रहता है। व्यंग्य में ही नहीं, राजनीति , समाज , अर्थशास्त्र क्षेत्रों में भी मौजूद रहता है। प्रत्येक रचना में दो ही प्रकार के विचार मूलतः पाए जाते हैं। जिसका मैंने पहले भी जिक्र किया कि विश्व इतिहास में भाववादी और भौतिकवादी विचार हमेशा मौजूद रहे है।आज भी मौजूद रहते है। व्यंग्य आलोचना उन विचारों को भी पाठक के सामने रेखांकित करती है। व्यंग्य में उपरोक्त दोनों पक्षों को निर्धारित करने का काम तीसरा पक्ष अर्थात वैचारिक पक्ष ही करता है।

इसके अलावा भी व्यंग्य आलोचना का सामाजिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक पक्ष भी है जिन्हें अगले अंक में देने की कोशिश की जाएगी।व्यंग्य आलोचना की तत्वमीमांसा, ज्ञानमीमांसा, नीतिशास्त्र, तर्कशास्त्र को भी प्रस्तुत करने की कोशिश होगी ताकि कोई मुकम्मल निष्कर्ष हमारे सामने आ सके। अभी यह विमर्श व्यंग्य आलोचना का प्रारम्भिक प्रारूप है, जिसे संगठित सुनियोजित करने की आवश्यकता है। अपनी मूल्यांकन पद्धति के आधार पर समकालीन व्यंग्य का अध्ययन करते हुए मुझे निम्न प्रकार के व्यंग्यकार नजर आये है -

पहलाः वर्तमान व्यवस्था की विसंगतियों पर प्रहार करना और नई व्यवस्था के निर्माण करने में अपनी भूमिका निभाना ।

दूसराः वर्तमान व्यवस्था की विसंगतियों पर प्रहार करना और इसी व्यवस्था में सुधार की उम्मीद और इसी व्यवस्था में यकीन करना और बनाये रखना।

जो तीसरी धारा है मूलतः उसके जड़चेतन में वर्तमान व्यवस्था को ही स्थापित करना है।

व्यंग्य आलोचना का एक मकसद यह भी होता है कि जिस व्यंग्य रचना की हम आलोचना कर रहे है उसका मकसद डाक्टर की तरह मरीज को बचाना है। यदि आलोचना में मरीज ही जिन्दा न रहा तो उस आलोचना को कोई और नाम दिया जाना चाहिए। एक बात और मूल्यांकन के मापदंड व्यक्ति और रचना के अनुसार बदलते नहीं है।

आलेख

विचार व्यंग्य की आधारशिला

सुनील सक्सेना

इसमें कोई संदेह नहीं है कि हिंदी साहित्य में व्यंग्य की स्वीकार्यता से परहेज रखने वालों के बावजूद व्यंग्य के रसिक पाठकों का कुनबा बढ़ा है। व्यंग्य एक स्वतंत्र विधा है, इस पर आलोचकों में सदैव मतैक्य रहे हैं। व्यंग्य लेखन अक्सर साहित्यिक गोष्ठियों में, जलसों में, समारोहों में, बहस का मुद्दा रहा है। व्यंग्य के रचना संसार को लेकर तमाम विमर्श बहस मुबाहिसों के बावजूद, इन दिनों व्यंग्य खूब लिखा जारहा है। धड़ल्ले से छप रहा है। समाचारपत्रों में वर्षों से मुख पृष्ठ पर कार्टून का कोना आरक्षित रहा है। आजकल अधिकांश समाचारपत्रों ने अपने संपादकीय पृष्ठ पर व्यंग्य लेखकों के लिए लम्बी लीज पर पट्टे आवंटित कर दिये हैं। प्रतिदिन व्यंग्य के कॉलम प्रकाशित हो रहे हैं। रविवारीय परिशिष्ट में भी परंपरागत कहानी, कविता, संस्मरण, सामयिक लेखों के साथ "व्यंग्य" आज पूरी ठसक के साथ मौजूद है। हिंदी की पत्रिकाओं ने भी व्यंग्य की अहमियत को समझा है। अब पत्रिकाओं में भी व्यंग्य का स्थाई स्तम्भ देखने को मिल रहे हैं। पाठक को व्यंग्य के बिना साहित्यिक खुराक अधूरी लगती है। इसलिए चाहें समाचार पत्र हो या पत्रिकाएं, व्यंग्य का छौंका जरूरी हो गया है।

अब समस्या डिमांड और सप्लाई की हो गई है। प्रकाशक को व्यंग्य के लिए "रिजर्वड स्पेस" हर कीमत पर भरना है। उनको यदि जीवित व्यंग्यकारों की रचनाएं समय पर न मिलें तो दिवंगत व्यंग्य विभूतियों के संकलन से उठाकर रचना छापने में तनिक भी संकोच नहीं करते हैं । रात के बारह बजे पेज फाइनल होने तक अगर जीवित या मृत लेखक की रचना का जुगाड़ न हो पाये तो "ब्लॉग" तो हैं ही। बस 'कट एंड पेस्ट' ही तो करना है। इस डिमांड और सप्लाई के गेप के चक्कर में व्यंग्य पिसा जा रहा है।

बस यहीं से शुरूआत होती है व्यंग्य के साथ समझौता करने की। प्रकाशक और व्यंग्यकार एक अलिखित करार में फंस गया है। ऐसी परिस्थिति में व्यंग्य की क्वालिटी प्रभावित होना लाजिमी है। आप रोज लिखने के लिए प्रतिबद्ध हो सकते हैं, परन्तु ये जरूरी नहीं कि हर दिन अच्छा और उससे बेहतर लिख पायें। अपवादों को छोड़ दें, तो व्यंग्य की कीमत देने को प्रकाशक राजी नहीं है। बिना पारिश्रमिक के जब रचना छप रही है तो किस मुंह से रचना का मूल्यांकन होगा। रचना स्तरीय बन पड़ी है या नहीं, उसकी अस्वीकृति का भय लेखक में खत्म हो गया है। व्यंग्यकार से "रचना अप्रकाशित" है, इस घोषणा की अपेक्षा भी कम ही प्रकाशक रखते हैं। व्यंग्यकार की भी बल्ले-बल्ले है। अब नैतिकता का ठेका कोई व्यंग्यकार ने तो ले नहीं रखा है। वो भी बिंदास एक व्यंग्य रचना तीन-चार जगह भेज देता है। इधर रचना छपी। उधर सुबह-सुबह बगैर कुल्ला किये, शौच क्रिया से निवृत्त हुए, फेसबुक व्हाटसएप पर व्यंग्य चेंप देता है। फिर दे दना-दान लाइक, थम्स अप, वाह, कमाल, बधाई, छा गये, जबरदस्त, धांसू, गजब जैसे अलंकरणों से दिनभर अपनी गाढ़ी कमाई का पैसा "नेट चार्ज" में फूंककर आनंद प्राप्त करता है।

ऐसा नहीं है कि व्यंग्यकार इस डिमांड और सप्लाई के गणित से अनभिज्ञ है। हर रचनाकार अपनी कृति को श्रेष्ठ और रूचिकर बनाने का पूरा यत्न करता है। रचना को अंतिम रूप देते समय कई बार उसे लगता है कि बात जम नहीं रही है। कहीं कुछ छूटसा गया है। रचना में अधूरापन लगता है। इस "प्रिमेच्योर" व्यंग्य डिलेवरी के पीछे भी कई वजहें हैं। मसलन शब्द सीमा के बंधन में व्यंग्य की जल्दी समेटा-समाटी करनी पड़ती है। किसी तात्कालिक घटना पर आनन-फानन में व्यंग्य लिख लिया , अगले दिन न छपे तो बासी हो जायेगा, इस चक्कर में रचना के साथ न्याय नहीं हो पाता है। इन सब विवशताओं और रचना की कमजोरियों के बावजूद लेखक इस बात से आश्वस्त रहता है कि उसकी रचना कहीं न कहीं तो प्रकाशित हो ही जायेगी। इस निश्चिंतता के चलते, वो विचार जहां से व्यंग्यकार को तंदुरुस्त व्यंग्य के जन्म लेने की प्रबल संभावना नजर आ रही थी, विचार को विस्तार देते-देते, शिल्प का तानाबाना बुनते-बुनते, अंत में क्षीण हो जाती है। तब लगता है कि एक सशक्त, टिकाऊ विचार के अभाव में रचना की संकल्पना कितनी कठिन होती है। किसी हेडलाइन को पढ़कर, किसी वक्तव्य को सुनकर, किसी चटपटी खबर को सुनकर, मित्र मंडली में किसी चर्चा से प्रभावित हो, रचनाकार झट से कलम लेकर व्यंग्य लिखने के लिए टूट पड़ता है।

विचार पर जितना मनन चिंतन होगा, रचना अपने को अभिव्यक्त करने में उतनी ही सक्षम होगी। किसी घटना पर। किसी मसले पर क्षण में पैदा हुए विचार पानी के बुलबुले के मानिंद है। जिस तीव्रता से विषय जहन में उठता है, उतनी ही तेज गति से वो लुप्त भी हो जाता है। विषय गंभीर होगा तो रचना विभिन्न आयामों के साथ लम्बी दूरी तय करने में सक्षम होगी। पाठक भी रचना के साथ कदमताल करेगा। परंतु यदि विचार का आधार ठोस नहीं होगा तो आप लाख शिल्पकारी कर लें, रचना भरभरा कर गिर जायेगी। व्यंग्य, व्यंग्य न होकर सपाट बयानी हो जाता है। जिसकी चपेट में आने के आरोप अक्सर व्यंग्यकारों पर लगते रहते हैं। व्यंग्य किसी फिल्म की कमजोर पटकथा की तरह नहीं है जिसे अच्छे निर्देशन से या अभिनेता के दमदार अभिनय के बूते पर हिट किया जा सके। 'कंटेंट' का समर्थ होना जरूरी है।

आलेख

व्यंग्य काव्य परंपरा और समकालीन परिदृश्य

भुवनेश्वर उपाध्याय
डबलगंज सेवढ़ा, दतिया, मध्यप्रदेश
७५०६६२१३७४

सामान्यतः जो हो रहा है और जो होना चाहिये के बीच हमेशा से ही एक मजबूर, अक्षम और असंतुष्ट आम आदमी खड़ा दिखाई देता है, जो कभी किसी व्यक्ति से पीड़ित है, तो कभी किसी व्यवस्था से शोषित। वो उन सभी लोगों के प्रति अपने मन में द्वेष और आक्रोश पालता है जो उसे प्रताड़ित करने के लिए उत्तरदायी हैं। कुछ इसे तकदीर मानकर स्वीकार कर लेते हैं तो कुछ प्रतिकार का साहस दिखाते हैं जो शक्ति के अभाव में एक शाब्दिक रचना के रूप में सामने आता है, जिसे हास्य व्यंग्य कहते हैं।

ये वही बुद्धिजीवी वर्ग है, जो व्यवस्था में सुधारात्मक परिवर्तन चाहता है परंतु दोषी को स्वयं दंडित करने की सामर्थ्य नहीं रखता। अपने मंतव्य की सफलता के लिये व्यंग्य को माध्यम चुनता है वो सटीक और मर्यादित होने के साथ साथ मारक भी होता है। उसका वार प्रभावशाली होता है और उद्देश्य को नंगा कर दुनिया के समक्ष खड़ा कर उसे अपमानित कर सुधार की संभावनाएं तलाशता है।

साहित्य में व्यंग्य काव्य की परंपरा को देखा जाये तो ये बहुत पुरानी है और तमाम पद्य रचनाओं, महाकाव्यों का हिस्सा है। इसे यूं कहें कि व्यंग्य मानव जीवन से जुड़ा एक ऐसा हिस्सा है, जो व्यक्ति के मजबूर होने पर भी उसके आक्रोश को बाहर निकालने में मदद करता है । साहस के न होने से मनुष्य अपनी भड़ास नहीं निकाल पाता और वह कुंठित हो जाता है परंतु थोड़ा सा साहस उसे विरोध के लिए प्रेरित करता है।

यही साहस समय के साथ हास्य व्यंग्य बनकर मनोरंजन के साधन के रूप में भी विकसित हुआ और विरोध के लिए भी, जो विकृतियों का मखौल उड़ाकर अपने उद्देश्य को प्राप्त करता है। संतुलित हास्य व्यंग्य को सख्त और नीरस होने से भी बचाता है और अपना काम भी करता है।

साहित्य में इसका विकास क्रमिक हुआ है, जो द्वेषपूर्ण गाली गलौज से ऊपर उठकर एक सभ्य और सोद्देश्य संरचना तक पहुंचा है। ये लेखक की मनोदशा और उसके द्वारा अपनायी गई भाषा और शैली पर भी निर्भर करता है कि वह भावनाओं में बहकर हास्य रचता है या फिर सिद्धांतों,नियमों का अनुसरण कर आलोचनात्मक होकर विशुद्ध व्यंग्य रचता है। यहाँ दोनों का उद्देश्य सुधार और परिवर्तन ही होता है। तभी एक अच्छी और सार्थक व्यंग्य रचना सामने आती है।

व्यंग्य जितना कम समय में लक्ष्य भेद कर अपने मंतव्य को प्राप्त करता है वह उतना ही श्रेष्ठ माना जाता है, इसीलिये व्यंग्य काव्य गद्य व्यंग्य की तुलना में ज्यादा असरदार होता है। ये श्रोता से सीधे तादात्म्य स्थापित कर लेता है, तभी इसे मंचों पर गद्य व्यंग्यों की तुलना में अधिक सफलता मिली है और तमाम साहित्य में उसी तरह यथायोग्य स्थान है, जैसा कि व्यंग्य का मानव जीवन में है।

मनुष्य के हृदय में उपजे आक्रोश को शब्दों में ढलकर लिपिबद्ध होने में बहुत समय लगा और तमाम माध्यमों से गुजरकर आज व्यंग्य एक परिष्कृत रूप में सामने आया है। व्यंग्य की इस यात्रा को कुछ उद्धरणों से समझा जा सकता है, जो मानवीय मनोविज्ञान और अपने समय का प्रतिनिधित्व करते हैं।

व्यंग्यकार अपने कौशल और योग्यता से मनोभावों को ह्यूमर(हास्य), विट(वचन-विदग्धता या उक्ति चमत्कार), आयरनी(वक्रोक्ति), सटायर(व्यंग्य) या फिर फार्स(प्रहसन) आदि माध्यमों से व्यक्त करता है। जो विभिन्न विधाओं, रूपों में उपलब्ध हैं।

भारतीय साहित्य के परिप्रेक्ष्य में व्यंग्य की उपस्थिति और उपयोगिता देखें तो ये आवश्यक प्रतीत होता है इससे कथ्य की रोचकता बढ़ जाती है और रचनाकार अपना मंतव्य प्राप्त कर लेता है।

भारतीय वांग्मय में व्यंग्य काव्य की परंपरा को खंगालने पर कबीर का नाम बड़ी मजबूती से उभर कर सामने आता है, जिसने पंद्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में अपनी छाप पूरी ठसक और मर्दपन से छोड़ी। सचमुच उनके व्यंग्यों की असली ताकत उनका सीधा प्रहार ही है (जिसे आज सपाट बयानी कहा जाता है) इसीलिए जो ठसक और मर्दपना कबीर के लेखन में नजर आता है वो कहीं अन्यत्र नहीं मिलता। शायद वो जानते थे कि आदमी के स्वार्थों और मूर्खताओं पर चढ़े बेशर्मी के खोलों पर शाब्दिक वक्रताएं और चमत्कार बेअसर ही होंगे।

उनके व्यंग्य इतने प्रभावशाली हैं कि व्यंग्य के मानक गढ़ने में समर्थ दिखते हैं और व्यंग्य की उस व्यावहारिक समझ और उद्देश्य को बल प्रदान करते दिखते हैं जो व्यंग्य को व्यंग्य बनाये रखती है। एक माशा दवा को सौ तोले शहद से खाने पर वो अपना असर खो देती है और ज्यादा वक्रता से व्यंग्य। ये बात कबीर की रचनाएं सिद्ध करतीं हैं और उनके मानदंडों और मानवीय मूल्यों की पैरवी भी। देखें-

'हिन्दू अपनी करैं बड़ाई, गांगर छूवन न देई
वेश्या के पाँयन तर सोवे यह देखो हिन्दुवाई।
मुसलमान के पीर औलिया मुर्गा मुर्गी खाई
खाला केरी बेटी ब्याहें घर में करें सगाई।
हिन्दुअन की हिन्दुवाई देखी तुरकन की तुरकाई।'

यहाँ कबीर का मर्दपना और उद्देश्य की महात्वता स्पष्ट झलकती है। यही बात उन्हें एक सफल व्यंग्यकार के रूप में स्थापित करती है और उनके समय की जरूरतों को बखूबी समझती हैं।

कबीर के बाद तुलसीदास जी भी व्यंग्य को उसी समय में एक नये और परिष्कृत रूप में लेकर आये। वो भले ही कबीर की तरह दुनिया से सीधे न टकराये हों परंतु उनके व्यंग्य काव्य कौशल की आड़ में भी उतने ही पैने और मारक हैं। उनकी भाषा और शैली कमाल के व्यंग्य रचती है। जैसे-

'पर अकाजु लगि तनु परहरहीं।
जिमि हिम उपल कृषि दल गरहीं
मारग सोई जाकहँ जोई भावा।
पंडित सोई जो गाल बजावा।।'

तुलसीदास जी के व्यंग्य काव्य कौशल के साथ मनोवृत्तियों पर चोट करते नजर

आते हैं।

ये व्यंग्य परंपरा रहीम और बिहारी के दोहों में भी सहज ही मिल जाती है। देखें

'कमला थिर न रहीम कहि , यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की वधु, क्यों न चंचला होय। (रहीमदास)
बसै बुराई जासु तन ताही कौ सनमानु।
भलौ भलौ कह छोड़िये खोटें ग्रह जपु दान।' (बिहारी)

समय के साथ व्यंग्य नये रूप और नये विषयों के साथ सामने आया। लिखने वालों के लक्ष्य बदले परंतु उद्देश्य वही रहा। कुछ व्यंग्य भड़ौए के रूप में भी लिखे गये और आक्रोश बाहर निकला। इसी क्रम में कवि अम्बिकाप्रसाद की ऐसी ही एक रचना देखिये जो पारिवारिक क्लेश के एक रूप को दिखाती है।

'सासु को विलोकि सिंहनी सी जमहाई लेति,
ससुर को देखि बाघिनी सी मुँह बावती।
ननद को देखे नागिनी सी फुंफकारें बैठी,
देवय को देखे डाकिनी सी डरपावती।।
भने 'परसन्न' मोछे जारती परोसिन की ,
खसम को देखे खाँव खाँव कर धावती।
ऐसी करकसाए कसाइन, कुलच्छनी है,
करम के फूटे घर ऐसी नारि आवती।।'

छंदों और अलंकारों के विधाई स्वरूप में व्यंग्य को कवि गिरिधर की कुंडलियों में भी देखा जा सकता है जो सरकारी अमले के रिश्वती रूप का चित्रण करती है।

'अमला आंख दिखावहीं, जब लौ मिलै न घूस।
रुसवत पाये भीतरे, काम करें ज्यों मूस ।।
काम करें ज्यों मूस, हाल कोई नहिं जानें।
लिखें और इजहार, असामी और बखानें।।
कपटी बकुला बरन, बाँधि के बैठे समला ।
परधन हरन प्रवीन, बड़े अपकारी अमला।।'

1850 से प्रारंभ भारतेन्दु काल में व्यंग्य काव्य कई रोचक स्वरूपों और सरोकारों के साथ सामने आया। जिनमें भारतेन्दु हरीशचंद्र की मुकरियाँ प्रमुख हैं जो व्यवस्था और मानसिकता पर करारी चोट बड़ी सहजता से करती हैं। जैसे-

'भीतर तत्व न झूठी तेजी। क्यों सखि सज्जन नहिं अंग्रेजी।।
आंखें फूटी भरा न पेट। क्यों सखि सज्जन नहिं ग्रेजुएट।।'

उसी दौर के रचनाकार पंडित प्रतापनारायण मिश्र के व्यंग्य भी छाप छोड़ते हैं। उनके द्वारा फैशन परस्ती को लक्ष्य करके लिखा एक व्यंग्य देखिये।

'तन मन से उद्योग न करहीं,
बाबू बनिबे के हित मरहीं,
परदेशिन सेवत अनुरागे,
सब फल खाय धतूरन लागे।'

व्यंग्य काव्य परंपरा में निरंतर नये कवि जुड़ते रहे जो अपने लेखन में व्यंग्य को स्थान देते रहे। इस परंपरा में नागार्जुन, महावीरप्रसाद द्विवेदी, निराला , बेढ़ब बनारसी, दिनकर , अल्हड़ बीकानेरी, गोपालप्रसाद व्यास ,दिनकर सोनवलकर, माणिक वर्मा , सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, रामानुज लाल श्रीवास्तव और मुकुट बिहारी सरोज जैसे कई कवि सामने आये, जिनके व्यंग्यों ने छाप छोड़ी है, जो कभी स्वयं की हंसी उड़ाकर तो कभी दुनिया की विकृतियों, बिडंबनाओं का उपहास करते नजर आते हैं। दुष्यंत कुमर की गजलें व्यंग्य को एक नये आयाम देती दिखती हैं ।

'यहाँ तक आते आते सूख जाती हैं कई नदियाँ
मुझे मालूम है पानी कहाँ ठहरा हुआ होगा।'

एक साफ सुथरी और चिंतन युक्त व्यंग्य परंपरा का पोषण करते इन रचनाकारों ने साहित्य और मंच दोनों को संवृद्ध किया। छंदवद्ध और छंदमुक्त लेखन के साथ व्यंग्य पैरोडियों ने भी मनोरंजन के साथ व्यंग्य लेखन के उद्देश्य को प्राप्त किये। गद्यव्यंग्यों की तुलना में अखबारों और पत्रिकाओं में व्यंग्यकाव्य की कम उपस्थिति खलती है परंतु मंचों पर इसकी उपस्थिति सकारात्मक है।

वर्तमान समय में व्यंग्यकाव्य में नई और पुरानी दोनों ही पीढ़ियां सक्रिय नजर आ रहीं हैं जो अखबारों, पत्रिकाओं के अलावा फेसबुक, व्हाट्सएप जैसी सोसल साईटों में तात्कालिक घटनाक्रम पर निरंतर लिख रहीं हैं, परंतु इनके लिखे का समाज और लक्ष्य पर कितना प्रभाव पड़ेगा इसकी परवाह किसी में नहीं दिखती और न कोई अपने उत्तरदायित्वों के प्रति संजीदा दिखता है। इनके लेखन का उद्देश्य केवल नाम, शोहरत और हो सके तो पैसा भी प्राप्त हो जाये। इसीलिए अधिकांशतः व्यंग्यकारों में ये प्रवृत्ति दिखने लगी है कि सांप भी मर जाये और लाठी भी न टूटे, परंतु वो ये भूल जाते है कि व्यंग्य लेखन का उद्देश्य इससे कही अधिक बड़ा और जनकल्याण वादी होता है।

अधिकांशतः रचनाकारों में इसके लिए एक त्वरा नजर आती है कि लिखने का मौका न छूट जाये जिससे वो अपनी कलात्मकता का प्रदर्शन कर सकें। तमाम त्वरित संचार साधनों ने जीवन को कुछ ज्यादा ही गतिशील कर दिया है जिसमें व्यंग्य भी शामिल है और इन हालातों ने व्यंग्यकारों के मध्य जगह बनाने और खड़े रहने की एक प्रतिस्पर्धा कायम कर दी है। जो सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही तरह की नजर आती है जिसके परिणाम स्वरूप कई गुट और संस्थायें सामने हैं जो अपनी ढपली अपना राग वाली बात चरितार्थ कर रहीं हैं। इस मानसिकता ने मंच पर व्यंग्य कविताओं का रूप ही बदल दिया है और तालियों की जरूरत ने व्यंग्यकारों की नियत का। इन हालातों पर लिखीं अपनी ही एक रचना याद आती है।

'चिंतन पर भारी हुये रिस्ते पद ओ नाम।
सब स्वारथ के खेल हैं परिपाटी बदनाम।।'

इस तेज भागते समय में जब घटनाएं और हालात अनुभूतियों तक नहीं पहुंचते तो लेखन भी उसी तरह उथला ही सामने आता है और महज औपचारिकता प्रतीत होता है जो कुछ दिन की उम्र लेकर पैदा होता है और फिर मर जाता है। फिर भी नये रचनाकारों की व्यंग्य काव्य में दस्तक एक सुखद कल के प्रति उत्साहित तो करती ही है साथ ही नयी सोच से व्यंग्य को समृद्ध भी करती है।

आज के दौर में मंचों पर व्यंग्य के नाम पर जो फूहड़ता और चुटकुला बाजी हो रही है उसने व्यंग्यकाव्य को दोयम दर्जे के मनोरंजन का साधन बना दिया है। महज श्रोताओं की तालियों और लिफाफों के लिए लिखे गये व्यंग्यों ने भले ही व्यंग्य का नुकसान किया हो, फिर भी तमाम तिकड़मों और व्यावसायिक समीकरणों को दरकिनार करते हुए, उपेक्षित ही सही मगर कुछ नये पुराने पाये अब भी इस परंपरा का पोषण कर रहे हैं। ये सुखद और आशान्वित करने वाला है।

आलेख

व्यंग्य विसंगतियों के तिलस्म को तोड़ता है

कंचन शर्मा
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय
समरहिल, शिमला

व्यंग्य एक ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा व्यंग्यकार जीवन के उस खोखलेपन, विसंगतियों व पाखंड की दुनिया के सामने उजागर करता है, जिनसे हम परिचित तो होते हैं, मगर उन परिस्थितियों को बदलने की कोशिश करने के बावजूद उन विसंगतियों- विद्रुपताओं के साथ समझौता कर जीने की आदत बना लेते हैं। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है 'व्यंग्य' सामाजिक विसंगतियों का चित्रण सीधे-सीधे न करके परोक्ष करता है, इसलिए व्यंग्य में मारक क्षमता अधिक होती है।

हिन्दी में व्यंग्य का आरम्भ संत-साहित्य से माना जाता है। व्यंग्य के आदि प्रणेता के रूप में जाने वाले 'कबीर' जाति-भेद, गरीबी-अमीरी, रूढ़िवादिता आदि पर मारक व्यंग्यों के लिए आज भी प्रचलित हैं। उसके बाद अंग्रेजों के खिलाफ, सामाजिक विसंगतियों के प्रति भारतेन्दु ने व्यंग्य को हथियार बनाया। उनके व्यंग्यों में अंग्रेजी साम्राज्यवाद और उनकी शोषक दृष्टि के प्रति आक्रोश को देखा जा सकता है। प्रेमचंद की कहानियों व उपन्यासों में किसानों व आम आदमी के दैनंदिनी की कठिनाइयों में करारे व्यंग्य देखने को मिलते हैं। निराला की 'कुकरमुत्ता' जैसी रचनाओं में व्यंग्य की अभिव्यक्ति विद्रूपता फैलाने वाले समाज के खिलाफ चुनौती के रूप में हुई है। यही नहीं स्वतंत्रता के बाद भी शोषण व अत्याचार कम होने के बाद और ज्यादा बढ़ गए। भारत में धर्म, शिक्षा, राजनीति जैसे सभी क्षेत्रों में विसंगतियां और ज्यादा बढ़ी हैं। ये विसंगतियां ही व्यंग्य के लिए आधार भूमि बनी। व्यक्ति व समाज की जटिलताओं के साथ अंतर्विरोध भी बढ़े और इन्ही अंतर्विरोधों व सामाजिक विषमताओं ने करुणापूर्ण व्यंग्य लेखन का विधान रखा जिसके 'हरिशंकर परसाई' प्रतिनिधि रचनाकार माने जाते हैं। परसाई की रचनाओं में पीड़ित भारत की छटपटाहट तो महसूस की जाती है साथ में जो शोषक वर्ग, आम आदमी को जिस तरह से शोषित करता है उसका खुलासा भी परसाई के व्यंग्य करते हैं। परसाई का व्यंग्य जब शोषक वर्ग के प्रति होता है, तो वह उस वर्ग के प्रति घृणा और आक्रोश उत्पन्न करता है, लेकिन जब वही व्यंग्य एक आम अभावग्रस्त आदमी पर होता है तो स्वतः ही करुणा पैदा करता है। यही नहीं सामान्य व्यक्ति से लेकर राष्ट्रीय व वैश्विक समस्याओं को परसाई ने अपने व्यंग्य में बखूबी उकेरा है। परसाई की तरह ही 'शरद जोशी' भी एक अलग भाषाई तेवर के साथ व्यंग्य लिखते है। शिल्प की सजगता इनके व्यंग्य लेखन की विशेषता रही है। इसी तरह श्रीलाल शुल्क, रवीन्द्रनाथ त्यागी, लतीफ घोंघी के नाम व्यंग्य लेखन में बड़े सम्मान के साथ लिये जाते है।

रवीन्द्रनाथ त्यागी का लेखन आत्म-व्यंग्य के कारण महत्वपूर्ण है। इनका लेखन न केवल पाठक को प्रफुल्लित करता है अपितु सोचने के लिए भी बाध्य करता है। जबकि लतीफ घोघी ने नारी-शोषण, कालाबाजारी, भुखमरी आदि विषयों के साथ-साथ आम आदमी की दैनंदिनी की परेशानियों को अपने व्यंग्यों में स्थान दिया है। इसी तरह आज तक सामाजिक मूल्यों को केन्द्र में रखकर समकालीन साहित्यिक परिदृश्य में व्यंग्य का लगातार सृजन हो रहा है। नरेन्द्र कोहली, अशोक 'शुक्ल, प्रेम जनमेजय, गिरिश पंकज आदि समकालीन साहित्य के प्रतिष्ठित नाम है। नए व्यंग्यकारों में सुभाष चन्द्र, निर्मल गुप्त, सुशील सिद्धार्थ, अशोक मिश्र, के.के. अस्थाना, एम. एम. चन्द्रा आदि प्रमुख हैं।

आज के संदर्भ में जबकि सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षणिक जैसे क्षेत्रों में विषमता का नाग फन उठाए खड़ा है, ऐसे में व्यंग्य को सामाजिक सतर्कता के हथियार के रूप में देखा जा सकता है। शोषक वर्ग आज भी आम आदमी को अपने तिलस्म की कैद में रखने के लिए तरह-तरह के छद्म कर रहा है। इन्हीं छद्मों का खुलासा व्यंग्यकार की कलम करती है। लेकिन हर विधा की तरह हास्य-व्यंग्य में भी कुछ बुनियादी अंतर्विरोध उभर कर आ रहे हैं। ये अंतर्विरोध एक नहीं अनेक स्तरों पर हैं। नयी पीढ़ी व पुरानी पीढ़ी का अंतर्विरोध तो खैर हर काल खण्ड में चलता ही रहता है। स्त्री लेखन की बात करे तो हास्य व्यंग्य लेखन में महिला व्यंग्यकार व पुरूष व्यंग्यकार का अंतर्विरोध 'सुल्तान' के अखाड़े जैसा ढम-ढमा-ढ़म करता रहता है। सबसे बड़ी बात हास्य और व्यंग्य का अंतर्विरोध बहस का विषय बना ही रहता है। व्यंग्य 'शैली है या विधा इसके ऊपर व्यर्थ ही अलाप चलता रहता है। लेखन कैसा है जैसे कि अच्छा या बुरा ये भी अंतर्विरोध का विषय है। व्यंग्य लेखन गद्य है या पद्य है, अखबारी की दृष्टि से है या साहित्यिक पत्रिका की दृष्टि से, मुद्दे छद्म है या बुनियादी, तकनीक नई है या पुरानी है, व्यंग्य लेखन में लेखकों की भीड़ है या अकाल पड़ा है आदि-आदि ताबड़-तोड़ अर्न्तविरोधों की एक लम्बी फेहरिस्त बन सकती है, जो अन्त में आकर सोशल मीडिया को कोसना 'शुरू करती है कि आखिर सोशल मीडिया व्यंग्य लेखन में किस तरह की भूमिका निभा रहा है, जिसके सकारात्मक व नकारात्मक पहलुओं में अंतर्विरोध चलता रहता है।

कुछ भी हो, चाहे कैसा भी अंतर्विरोध हो, 'व्यंग्य' सामाजिक विसंगतियों के तिलस्म को तोड़ने का वह मंत्र है जिससे समाज को सुधारा जा सकता है। व्यंग्य के अन्दर बड़ी मारक शक्ति होती है। व्यंग्य विसंगतियों

के प्रति घृणा और आक्रोश तो पैदा करता ही है साथ ही एक आम त्रस्त आदमी के लिए करुणा के कपाट भी खोलता है। भले ही आज हम आजाद हो चुके हैं, लेकिन एक बहुत बड़ा वर्ग अब भी उसी जादुई पिंजरे में कैद तोते की तरह छटपटा रहा है, जिसे तोड़ने के लिए किसी हातिमताई की जरूरत है। एक खास वर्ग के लिए आजादी के कोई मायने नहीं। पहले शोषक अंग्रेज थे, आज एक मुट्ठी भर अपने ही लोग 'शोषक हैं। यह सामाजिक असमानताओं का एनाकोंडा ही तो था जिसने सोने की चिड़िया कहलाने वाले भारत को अंग्रेजों का गुलाम बनाया। क्योंकि करोड़ों लोग तब भी अपनी रोटी, कपड़ा और मकान के ऊपर नहीं सोच पाए और आज भी वही स्थिति है। आक्रोश, छटपटाहट, विषमता, विद्रूपता आमजन को नक्सल, माओ की कंटीली राह पर घनघोर अन्धेरे जंगलों में भटकने को मजबूर कर रही है, जो समय व समाज के हित में नहीं है। ऐसे में व्यंग्य अपनी मारक 'शक्ति से इस तिलस्म को चकनाचूर करे इसकी दरकार है।

आम आदमी अकसर ये समझ नहीं पाता कि हो क्या रहा है? कितनी ही सरकारी घोषणाएँ जो समाज को बेहतर बनाने की दिशा में हैं सिर्फ आंकड़ों तक रह जाती हैं। सरकारी मशीनरी का दुरुपयोग, राजनीति का दुरुपयोग, गरीबी उन्मूलन, स्वास्थ्य, आवास, कृषि, दहेज, कन्या भ्रूण हत्या, खाद्यान्न संकट ये सब बढ़ते ही जा रहे हैं। ऐसे में व्यंग्यकार व्यर्थ के पालों में बंटकर अपने व्यंग्य के धर्म से विमुख हो रहे हैं। आज जबकि भारत को विश्वशक्ति के रूप में देखा जाने लगा है वो भी ऐसे में जबकि मुट्ठी भर सितारे की चमक की चुंधियाई रोशनी में अन्धकारमय करोड़ों दी, इन्सान रूपी बाती को बिन तेल ही जलकर भस्म होने में मजबूर हैं। ऐसी विश्व 'शक्ति जहाँ कुछ लोग बीसियों मंजिल की आलीशान इमारतों में दमघोंटू जिंदगी बिताते हुए भी गालों में चमक लिए घूमते है और करोड़ों लोग मुनिसिपल कमेटी की गटर की बेकार पड़ी पाइपों में गुजर-वसर कर स्वप्निल मुस्कान की राह देख रहे हैं। क्या कीजिएगा, इस विश्व 'शक्ति का हुजूर! जैसे पेड़ खजूर, पथिक को छाया नहीं, फल लागे अति दूर। तो व्यंग्यकार की कलम क्यों अपने व्यंग्य बाणों से इन विसंगतियों का संहार नहीं कर रही?

इस देश में जहां एक गरीब भूखा बच्चा बेबसी में चोरी की गई एक रोटी के लिए न केवल चोर कहलाता है, बल्कि जमकर पिटता भी है और इस दृश्य के मूक द्रष्टा केवल अपने साधन-सम्पन्न होने का सुकून मनाकर आगे निकल पड़ते है, जैसे कुछ हुआ ही नहीं। इन आलीशान भवनों की रोशनी में कोई कमी नहीं आ जाएगी अगर एक दीया उसमें किसी गरीब के घर को रोशनी दे देगा।

ये अन्याय ही तो है जहां देश को चालाकी से वर्णों में बांट दिया गया और पिछले जन्म के पुण्य-पाप का लेखा-जोखा बता कर उसे गरीब व त्यक्त ही रहने पर मजबूर कर दिया। इस तरह से देश में लाखों लोगों के विकास को फ्रीज कर दिया गया है। ऐसा देश जहां नारी को 'शक्ति माना गया है और वहीं लुटी-पिटी नारी को मदद के लिए कोई आगे आने का दुस्साहस नहीं करता। कन्या पूजन वाले हाथ कन्या भ्रूण तक पहुंच कर उसे राक्षसों की भांति मसल रहे हैं। मां-बाप वृद्धाश्रम में और 'शहरों में कुत्ते पालकर अपनी 'शान बढ़ा रहे हैं। कितना अंतर्विरोध है हमारे अपने ही समाज में। ऐसे में व्यंग्य उस नश्तर का नाम है जो समाज के इन सड़े-गले अंगों की 'शल्यक्रिया करने में सक्षम है।

चाटुकारिता, तलवा चटाई और चमचागिरी के इस दौर में चिमटे को कौन पूछता है। पर ध्यान दीजिएगा चिमटा वो है जो तपती भट्ठी से भी आपको रोटी निकाल कर देगा और उसे खुद अपने लिए कोई दरकार नहीं रहती। और चमचा! चमचा तो साहेब सबका पेट भरता है पर चमचे का अपना पेट कभी भरा है क्या! पर क्या करे चमचे का जमाना है।

अफसोस आज मूल व्यंग्य की वो गंगधारा कहीं कैद हो गई है, जो समाज से विषमताओं को धोने में सक्षम थी। लेखकों के अपने पाले हैं। अपने गुट हैं। जहां जिसके कार्य से परेशानी होना 'शुरू हुई वहीं अंतर्विरोध 'शुरू। कितने ही प्रकार के अंतर्विरोधों में ऊर्जा खपती है और इस चक्कर में 'शोषक आनंद की लीलाएं खेल रहा है। 'शोषित को तुम्हारे अंतर्विरोधों से कोई लेना देना नहीं। अंतर्विरोध के इस मकड़जाल में व्यंग्य लेखन फिर समाज को क्या दे रहा है-बाबा जी का टूल्लू! इस तरह से खेमे में बंटकर साहित्य-कला-संस्कृति का कोई भला नहीं होने वाला है। लेखन समाज के अंधियारे को दीप्तिमान करने वाली लौ है न कि एक-दूसरे खेमे से जलभुन कर राख होने वाला तंदूर। व्यंग्य का जो ओजस् झरना परसाई व 'शरद जोशी के काल खण्ड में बह रहा था वो दूसरी पीढ़ी के व्यंग्यकारों की महत्त्वाकांक्षाओं, मठाधीशी के चलते छोटे-छोटे ताल-तलैया के रूप में बदलने की आशंका पैदा कर रहा है। आखिर व्यंग्यकारों ने नई पीढ़ी के व्यंग्यकारों को क्या दिया? बस स्वयं को महिमामंडित कर आत्ममुग्धता में लगे रहे और नई पीढ़ी को व्यंग्य का परिदृश्य देने में विफल रहें। हम केवल व्यंग्य के शिल्प की वकालत करते रहे, व्यंग्य 'शैली है या विधा इसी झगड़े में पड़े रहे, न तो इसकी विधा का आकाश तैयार किया, न ही व्याकरण बनाया। बस व्यंग्य को 'विधा' बनाने का झंड़ा फहराते रहे। व्यंग्य में नयापन क्यों नहीं आ रहा, क्यों पुराने व्यंग्य नई किताबों में निकलकर आ रहे हैं। क्यों सारा ध्यान पुरस्कारों के आस-पास केन्द्रित हो चुका है। क्यों साहित्य को, गुटों में बांटा जा रहा है, इसी चक्कर में कितने ही अच्छे व्यंग्यकार परिदृश्य से गायब हो गए और कुछ को जबरदस्ती गायब कर दिया है इतना कि वे आलोचना की चर्चा से भी बाहर कर दिए गए है। व्यंग्य वो 'शैली है जिसका अपना ही स्वाद है, अपना ही आकर्षण है। इसके शिल्प को वैज्ञानिक ढंग से देखें तो उसमें आक्रोश भी नजर आएगा व करुणा भी। चलो निकल आते हैं पालों और खेमों से और तोड़ डालते हैं व्यंग्य के खंजर से शोषकों का तिलिस्म ।

आलेख

अपने विधान के तटबंध स्वयं गढ़ती व्यंग्य विधा

राजेश सेन

व्यंग्य लेखन साहित्य की उद्दाम विधा है। साहित्य अनुशासन मांगता है मगर व्यंग्य-विधा साहित्य के अनुशासन में बंधकर भी उसके किसी नियत नियम से नहीं बंधना चाहती। वह अनुशासन की परिधि में रहकर भी एक अनुशासनातीत विधा होती है। वस्तुतः व्यंग्य लेखन को अभिव्यक्ति के कोई नियत-अनियत तटबंध स्वीकार ही नहीं होते हैं। वह स्वयं विसंगतियों के खिलाफ अपना निजी अनुशासन लिखती और गढ़ती है। उसे न तो गद्य के किसी परिचित खाके में ही बाँधा जा सकता है और न ही पद्य जैसे किसी छंद-बंध की निर्दिष्ट नियमावली में एक-सूत्र पिरोकर परिभाषित किया जा सकता है। व्यंग्य साहित्य विधा का वह कड़वा फल होता है जो अपने बाहरी आवरण में भले ही अपनी सख्त-मिजाजी के चलते हमें अस्वीकार्य नजर आये, मगर उसकी अन्तर्निहित तासीर अंततः विसंगति की सेहत पर बड़ा ही गहरा असर छोड़ती है। आप कह सकते हैं कि एक व्यंग्यकार हनुमान जैसा बुराई संहारक होता है, जिसके हाथों में व्यंग्यकारिता की कलम रूपी न्यायप्रिय गदा होती है और जो विसंगति, विद्रूपता और बुराई पर तो प्रहारक दिखाई देता है, मगर अपने परिणाम में अपने दंड-बल से एक सुधारक जैसा योद्धा भी होता है। उसके सामने बुराइयाँ कभी अजेय नहीं हो सकतीं। न ही बुराइयाँ उसके निर्मम प्रहार से अपनी रक्षा ही कर पाती हैं। अतएव, व्यंग्य को किसी लेखकीय आचरण व विधान के तटबंधों में बांधकर उसे सीमित करना या व्याकरण के खाकों में जकड़कर उसके प्रताप को छोटा करना निहायत ही असंभव काम है। तभी तो शायद व्यंग्य में एक कुलशील अबोध बालक जैसी नजाकत युक्त छवि खोजना अपने आप में बेमानी बात होती है। कैसा भी युग हो, व्यंग्य कभी राम-अवतारी नहीं हो सकता। उसे हर काल-खंड में केवल और केवल कृष्ण-अवतारी जैसा न्यायप्रिय ही होना होता है। तभी तो वह टेढ़ी-मेढ़ी, दबी-छुपी और ज्ञात-अज्ञात विसंगतियों के समक्ष भी अपनी समूची सच्चाई के साथ प्रभावी तरीके से उनका उन्मूलक हथियार साबित होता है।

साहित्य की अन्य विधाओं का लेखन अभिजात्य कुलशील जैसा सु-संस्कारित लेखन होता है। उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम राम की भांति अपनी मर्यादित रचना-धर्मिता के आचरण में रहकर अपना रचनाधर्म निभाना होता है। उनके समक्ष भद्र-लेखन यानि अनुशासित लेखन एक अनिवार्य शर्त होती है। उसे अपनी शुचिता के हर नियत मानदंडों का पालन करना ही होता है। मगर मर्यादा का अनुगामी होने के बावजूद व्यंग्य से महज एक कुलशील और अभिजात्य आचरण की उम्मीद नहीं की जा सकती। उसे हर हाल में मर्यादित साहित्य होने के बावजूद 'जैसे को तैसा' वाला कृष्ण-धर्मी आचरण भी अपनाना ही होता है। आप व्यंग्य से ये उम्मीद कतई नहीं कर सकते कि वह अपने अनुशासन की परिधि में रहकर विसंगति रूपी आततायी रावण का वध करेगा। यह संभव भी नहीं। उसे कृष्ण के समान अपने सात्विक छल-बल का देश-काल और परिस्थिति के अनुरूप उपयोग करते हुए अपना रचना धर्म निभाना होता है, तभी तो वह अन्याय रूपी कंस नामक बुराई का आसानी से वध कर पाता है। इसका यह कतई मतलब नहीं की व्यंग्य एक वाचाल, आततायी और अनावश्यक प्रहारक लेखन होता है। व्यंग्य अपनी मर्यादाओं को बेहतर पहचानता है। मगर जरूरत पड़ने पर उसका अपनी मर्यादाओं के भीतर से शाम-दाम-दंड-भेदी होना भी व्यंग्य लेखन की एक आवश्यक और अवश्यंभावी शर्त होता है। केवल इस आधार पर उसे साहित्य के मापदंडों पर दोयम या अछूत मानकर खारिज नहीं किया जा सकता कि वह अन्यतम साहित्य विधा की तर्ज पर एक नियत खाके के बाहर जाकर भी अपना कर्तव्य निभाते हुए विसंगति का मान-मर्दन करता है। उसे समाज के भीतर व्याप्त उन कंसों और दुर्योधनों तक हर हाल में पहुंचना ही होता है, जिन तक पहुंचना अमूमन साहित्य की अन्य विधाओं के लिए कई-दफा अपनी निहित मर्यादाओं और अनुशासनों की मजबूरी के चलते संभव नहीं हो पाता। किसी को तो समाज की रक्षा के लिए अपना ब्रम्हास्त्र उठाना ही होता है। और यह काम व्यंग्य-विधा अपने स्वयंभू बूते पर बखूब निभाती भी रहती है।

यहाँ बात एक व्यंग्यकार में आवश्यक नैतिक गुणों की भी होनी चाहिए। एक व्यंग्यकार को अपने में नैसर्गिक तौर पर निहित सभी सुलभ व सहज साहित्यिक रचनाधर्मिता के गुणों से इतर अपनी वाजिब सीमाओं का भान होना भी नितांत आवश्यक होता है। यह एक सर्वज्ञात तथ्य है कि एक व्यंग्यकार साहित्य की अन्य विधाओं के मामले में अभिव्यक्ति के आयामों के अतिरिक्त आस्त्रिक गुणों से लैस होता है। उसके पास अपनी बात कहने के बनिस्बत अतिरिक्त और मारक आयाम हासिल होते हैं। देखा जाय तो एक व्यंग्यकार एक साहित्यकार और लेखक होने के अलावा हाथों में कलम और लेखन की तल्ख तासीर लिए अपने न्यायप्रिय मंसूबों की एक प्रहारक दंड भी लिए होता है। आप कह सकते हैं कि एक तरफ तो वह एक कड़वा करेला होता है और उस पर नीम-चढ़ा भी होता है और यही तासीर उसके काम की खूबसूरत मजबूरी भी होती है। मगर उसे अपनी इस तीक्ष्ण-कसैली तासीर का बड़ा ही संभल कर उपयोग करना होता है। हाथ में दंड हो तो इसका यह कतई मतलब नहीं कि वह आतताई होकर गैर-विसंगतियों पर भी हमलावर होकर उसका मान-मर्दन करते फिरें। जो कि कई-एक दफा देखने में भी आता है। दूसरा यह कि, एक व्यंग्यकार को शब्द-फरोशी से भी बचना चाहिए। वर्ना उसके द्वारा उन्मूलित दुष्प्रवृत्तियाँ खुद व्यंग्यकार की कलम के प्रहार में से विद्रोह के गली-रास्ते खोजकर अपना बचाव कर सकती हैं। कहने का लब्बो-लुआब यह कि एक व्यंग्यकार को शाब्दिक आवृत्ति पर नहीं बल्कि किसी की विषय की प्रवृत्ति पर आततायी होना चाहिए। इसके अलावा व्यंग्यकार को हिंसात्मक-व्यंग्य और व्यंग्यात्मक-हिंसा के मोह-पास से भी बचने की कोशिश करना चाहिए। उसके लेखन में आलोचना का भाव भी विसंगति उन्मूलन के

मूल-भाव की निवृत्ति तक ही सीमित होना चाहिए। उसे दुराग्रही लेखन से तो हरदम ही बचना चाहिए। हालांकि आग्रह और दुराग्रह की महीन सीमा रेखा का भेद करना एक व्यंग्यकार के लिए बड़ा ही टेढ़ा काम होता है द्य मगर ये भी हकीकत है कि एक व्यंग्यकार अपनी सभ्य-सीमाओं को नैतिक तौर पर बेहतर ही जानता-पहचानता है और अगर वह आत्म- विश्लेषण के बावजूद भी अपनी आग्रही सीमाएँ को लांघता है, तो बेशक वह अपनी इस गार्जियन विधा के साथ खुला विश्वासघात करता है। ऐसा व्यंग्यकार अपने आपे में बिगडेल होकर एक दंत-पीसक व्यंग्यकार ही समझा जाना चाहिए।

व्यंग्य विधा से जुड़ने के अपने अतिरिक्त खतरे भी होते हैं। इसके साधकों को साहित्य की अन्य विधा की तुलना में अतिरिक्त जोखिम भी उठाने होते हैं। ये जोखिम इस विधा के साथ जुड़े बाय-डिफॉल्ट प्रारब्ध जैसे होते हैं। जब एक व्यंग्यकार सामाजिक बुराइयों, विद्रूपताओं और विसंगतियों पर अपनी कलम रूपी गदा चलाता है, तो उसका विशुद्ध उद्देश्य किसी व्यक्ति विशेष या व्यक्तियों के समूह को आहत करना कतई नहीं होता है। अपितु वह विसंगति के साझा परिवेश पर अपनी चोट कर रहा होता है। मगर जब कोई विसंगति आहत होती है, तो उसकी जड़ों को खाद-पानी देकर लालन-पालन करने वाली वैयक्तिकता भी कहीं न कहीं आहत तो होती ही है और जब किसी व्यंग्यकार के अ-प्रयासे (जबकि एक व्यंग्यकार का उद्देश्य किसी व्यक्ति को प्रत्यक्ष रूप से आहत करना कतई नहीं होता) कोई वैयक्तिकता आहत होती है, तो वह नैसर्गिक मानवीय प्रवृत्ति के अनुसार पूर्वाग्रही होकर उसकी दुश्मन तक हो जाती है। देखा जाए तो ऐसी पूर्वाग्रही दुश्मनी के खतरे एक व्यंग्यकार के साथ कदम-कदम पर चलते रहते हैं। कुलजमा एक व्यंग्यकार सिर पर कफन बांधकर भी बुराइयों से लड़ने का अतिरिक्त जोखिम उठाता फिरता है। ऐसे अन्तर्निहित खतरे व्यंग्य के अलावा साहित्य की अन्य विधाओं में बनिस्बत कमतर ही पाए जाते हैं। जबकि एक व्यंग्यकार तो पल-पल और कदम-दर-कदम एक विद्रोही लेखन करते हुए ये आसन्न खतरे अवश्यंभावी तौर पर उठाना ही होते हैं। कोई भी निष्पक्ष व्यंग्यकार इन खतरों से बच नहीं सकता।

शेष रही व्यंग्य लेखन के लिए आवश्यक व्याकरण की बात, तो उस पर बहुतेरे विद्वान व्यंग्यकार अब तक अनेकों बार रोशनी डाल चुके हैं। व्यंग्य लेखन में अभिधा, व्यंजना, कथ्य, शिल्प, बिम्ब, रूपक, भाषा-शैली इत्यादि विषय क्या हों, या इनका आनुपातिक महत्व क्या होता है, ये सब बातें आप बेहतर ही जानते हैं। दरअसल, व्यंग्य विधा अब तक अपने विधान के तटबंध नियत ही नहीं कर सकी है। अलबत्ता अबतक व्यंग्य विधा का कोई आदर्श विधान ही नहीं गढ़ा जा सका है। जाहिर है कि अपने नियत विधान के अभाव में व्यंग्य विधा अपनी नैसर्गिक परिभाषा खोजती हुई एक यायावर विधा है। अतः वह अपने विधान के नित-नए तटबंधों को गढ़ने के लिए भी स्वतः अभिशप्त है।

उपरोक्त वर्णित बिंदु विमर्श के लिए मुझे आवश्यक लगे इसलिए विद्वान वरिष्ठ व्यंग्यकारों से क्षमा-भाव की कामना सहित यहाँ कुछ लिख दिया गया है। आशा है व्यंग्य विधा के मनीषी-गण इस लेखकीय गुस्ताखी को अन्यथा नहीं लेंगे ।

आलेख

माया महा ठगनी हम जानी

बाल मुकुन्द ओझा
मॉडल टाउन, मालवीय नगर, जयपुर
मो.- 9414441218

व्यंग्य साहित्य की एक विधा है जो उपहास, मजाक और ताने का मिलाजुला स्वरूप है। हिन्दी में हरिशंकर परसाई और श्रीलाल शुक्ल व्यंग्य विधा के प्रमुख हस्ताक्षर हैं। हर किसी पर इस अस्त्र का उपयोग नहीं किया जा सकता। इसे किसी के पक्ष में प्रयुक्त करना है तो किसी के विरुद्ध। व्यंग्य विचार से पैदा भी होता है और अभिव्यक्ति से सामना कराता है। व्यंग्य विसंगति, झूठ और पाखंड का भंडाफोड़ कर सत्य का अपने ढंग से साक्षात् कराता है। व्यंग्य फब्तियां कसती हैं जो हंसाती,गुदगुदाती और तिलमिलाती हैं।

आजादी के बाद व्यंग्य विधा खूब फली फूली। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित नेहरू पर व्यंग्य बाणों की बरसात संसद और उसके बाहर खूब देखी गई। नेहरू के रहन सहन ,कपडे और खाने पीने तक पर खूब ताने मारे गए। व्यंग्यकारों ने इंदिरा गाँधी को भी नहीं बख्शा। इंदिरा से नरेंद्र मोदी तक व्यंग्य ,उपहास और मजाक का लम्बा दौर चला। जुमलों ने भी ऊंचाइयों को छुआ। गरीब के खाते में १५ लाख का जुमला खूब प्रचलित हुआ। मजाक और परिहास के तीर भी इस पर चले। यह अलहदा है इसका शिकार भी सदा की तरह गरीब ही हुआ। इंदिरा गाँधी के समय जो हिटलर की चाल चलेगा बहुत प्रचलित हुआ। इसको प्रचलित करने वाले आज सत्तासीन है और यह नारा उन पर भी सटीक बैठता है।

आज माया से किसे मोह नहीं है मगर माया भी बंटी हुई है। जब तक साथ है तब तक सभी माया के पुजारी है। सावधानी हटी तो दुर्घटना घटी की तर्ज पर साथ छूटा तो माया का मोह भी त्यागना पड़ेगा। कबीर के शब्दों में माया महा ठगनी हम जानी।

लेकिन आज स्वस्थ आलोचना और व्यंग्य का स्थान फूहड़ता और व्यक्तिगत आरोपों ने ले लिया है। इसके साथ ही सहिष्णुता का बाजार भी गर्म हो गया। सहिष्णुता को लेकर अवार्ड लौटने वाले नितांत एक पक्षीय हो गए। उन्होंने जैसे आँखों पर पट्टी बांध ली। कहने का मतलब है मीठा-मीठा गप-गप, कड़वा-कड़वा थू थू । व्यंग्य भी पक्षपात का शिकार हो गया और व्यंग्यकार खेमे के शिकार हो गए।

चिंतन

व्यंग्य का स्वरूप

सुनील जैन राही

साहित्य में विभिन्न प्रकार के काल आए और चले गए। निरन्तर चलने की प्रक्रिया में रीतिकाल, भक्तिकाल, कविता, नई कविता या आज के संदर्भ में गद्यमय कविता का समय इतना नहीं रहा, जितना व्यंग्य का काल शुरू से अब तक नित नई ऊंचाइयों पर उड़ान भरने को तत्पर दिखाई देता है। इस काल को व्यंग्य काल अथवा व्यंग्यकारों का कला कहा जाए तो मेरी दृष्टि में अनुचित नहीं होगा। व्यंग्य कभी उपेक्षा का प्रतीक माना जाता था। (तथ्य स्वीकारोक्ति के लिए इतिहास गवाह है, जब व्यंग्य का कॉलम एकाध ही पत्रिका में परिलक्षित होता था। हां कभी-कभार कार्टून कोना, कार्टून दिखाई दे जाता था।) व्यंग्य को विधा और शैली से दूर रखा जाता था। यह भी एक मजाक की तरह पैदा हुआ, लेकिन अब एक गम्भीर रूप में हमारे सामने अपने अडिग अस्तित्व के साथ खड़ा है।

व्यंग्य में बहुत बड़ी-बड़ी बातें पैदा की जा रही हैं। अभिधा, लक्षणा, हास्य, व्यंग्य में हास्य के अनुपात और इसी तरह की तमाम बातें की जा रही हैं। व्यंग्य पर विमर्श के लिए सम्मेलन आयोजित हो रहे हैं, लेकिन इन सम्मेलनों में केवल एक ही गुट शामिल होता है। व्यंग्य अलग थलग और व्यंग्यकार गुटों में है। बात व्यंग्य से आरम्भ से शुरू होती और दूसरे गुटों के क्रियाकलापों पर, व्यक्तित्वों पर, लेखकों पर टीका-टिप्पणी के साथ समाप्त हो जाती है। व्यंग्य क्या है, इससे शायद ही कोई व्यंग्यकार अपरिचित होगा, लेकिन व्यंग्य की उत्पत्ति के कारणों पर, व्यंग्य के तत्वों पर चर्चा न तो होती है, न उस पर ध्यान दिया जाता है। व्यंग्य कहां और कैसे उत्पन्न हो जाता है, व्यंग्य में हास्य का अनुपात कितना होना चाहिए, व्यंग्य की भाषा कैसी होनी चाहिए, व्यंग्य के बारे में व्यंग्य पाठ की भाषा और व्यंग्य पठन की भाषा में क्या अंतरा होना चाहिए। मेरा आशय है, इन पर खुलकर विचार होना चाहिए। यह तथ्य सही है कि व्यंग्य में अभिधा और लक्षणा का प्रयोग होता है, होना भी चाहिए लेकिन क्या एक सार्थक व्यंग्य में कौन से तत्व होने चाहिए इस पर विचार करके लेखक लिखता है?

नहीं ऐसा नहीं होता है। व्यंग्य पर विचार व्यंग्य लिखने के बाद होता है। व्यंग्य की परिस्थितियों का विचार व्यंग्य तैयार होने के बाद होता है। व्यंग्य में हास्य के अनुपात के बारे में व्यंग्य रचना के बाद उसे सम्मेलन या जनता के हिसाब से उसमें हास्य की भूमिका तय की जाती है। किसी भी व्यंग्य सम्मेलन, गोष्ठी में व्यंग्य के नाम पर कुछ चटपटे अनुभवों से शुरूआत की जाती है, ताकि जनता का ध्यान आकर्षित किया जा सके। यह व्यंग्य का एक आवश्यक तत्व भी है। अगर व्यंग्य के माध्यम से आप कुछ कहना चाहते हैं तो पहले जनता का ध्यान आपके वक्तव्य पर आए और आपकी बात उन तक पहुंच सके।

व्यंग्य की लोकप्रियता का कारण उसकी भाषा रही है। व्यंग्य की भाषा सहज और सरल शब्दों में सुसज्जित होनी चाहिए, ना कि भारी भरकम शब्दों से। आलेख के बांयी ओर जब व्यंग्य लिखा दिखाई देता है तो पाठक आपकी बात को गम्भीरता से सुनने का मन बना लेता है, उस दौरान वह शब्दकोश उठाने या उसे लाने के विचार में नहीं होता। व्यंग्य की सरल भाषा ही व्यंग्य को लोकप्रिय बनाने में सार्थक रही है।

व्यंग्य की चर्चा करते समय यह तथ्य उभर कर सामने अकसर आता है कि व्यंग्य कैसे उत्पन्न होता है और कहां से इसका अवतरण होता है। व्यंग्य कहीं भी, किसी भी स्थिति, परिस्थिति या घटना में पैदा हुई विसंगति से सामने आता है। व्यंग्य के लिए किसी कहानी की जरूरत नहीं होती, हां घटना की जरूरत अवश्य हो सकती है। आपकी कोई हरकत व्यंग्य का कारण बन सकती है या आपके द्वारा कही गई बात या कोई शब्द व्यंग्य की आधारशिला बन सकता है। व्यंग्य के लिए किसी स्थान विशेष पर शोध के लिए जाने की जरूरत नहीं है। हो सकता है व्यंग्य घर से दफ्तर तक, जंगल से लेकर शहर तक, मंत्री से लेकर संतरी तक यानी कहीं भी व्यंग्य की भूमि तैयार हो सकती है। व्यंग्य के लिए विषय के रूप में स्थिति का आना और व्यंग्य का तैयार होना एक घटना के समान है।

व्यंग्य के विकास के साथ इसमें हास्य के साथ-साथ करुणा ने अपना विशेष स्थान बनाया है। कुछ लेखक अपने व्यंग्य का समापन करुणा के साथ तो कुछ लेखक अपने व्यंग्य का समापन हास्य के साथ या फिर कुछ व्यंग्यकार स्वयं को मजाक बनाकर अंत करते हैं।

लेकिन मेरी दृष्टि में व्यंग्य आज इन पांच तत्वों के आगे पीछे घूमता है।

१- विषय के आधार पर
२- घटना के आधार पर
३- वर्णनात्मक शैली के आधार पर
४- यात्रा वृत्तांत के रूप में
५- आंखों देखी रूप में (कमेन्ट्री रूप में)

विशिष्ट व्यंग्यकार परसाई, जोशी और प्रेम जनमेजय ने इन सभी विधाओं में व्यंग्य को सार्थक किया है। इनके लेखन में इन सभी शैलियों का मिला जुला या अलग-अलग प्रकार से व्यंग्य को सार्थक रूप प्रदान किया गया है।

शरद जोशी ने कथा कथन (मराठी) शैली में व्यंग्य को पढ़कर प्रस्तुत करने की दिशा में एक मील पत्थर गाड़ दिया। व्यंग्य को गद्य स्वरूप में पढ़ने की परम्परा और उसके प्रस्तुतीकरण से व्यंग्य की दिशा तय करते चले गए। हालांकि परसाई इस कार्य में सफल साबित नहीं हुए। इसी शैली में प्रमुख नाम आज भी हमारे सामने हैं, जिनमें डॉ. प्रेम जनमेजय, आलोक पुराणिक, श्रवण कुमार उर्मलिया, सम्पत सरल के नाम उल्लेखनीय हैं।

व्यंग्य जिस ऊंचाई पर पहुंच चुका है, उसमें हर कोई अपनी नाव खेना चाहता है, लेकिन इस नाव खेहन में व्यंग्य का मुख्य विषय छूट जाता है। मन में जो टीस पैदा करता है, व्यंग्य में वह बहुत कम दिखाई देता है। व्यंग्य को फूहड़ बनाने का काम भी कुछ लोग कर रहे हैं। कुछ लोग घटना प्रधान व्यंग्य के माध्यम से छा रहे हैं तो कुछ कहानी सुनाकर या कुछ चुटकलों को जोड़कर हास्य पैदा कर व्यंग्यकार की श्रेणी में दिखाई दे रहे हैं।

खैर व्यंग्य कहां से आया और कहां जाएगा। सवाल यह नहीं है। सवाल है कि व्यंग्य में क्या होना चाहिए। व्यंग्य में करुणा, सीमित हास्य, मन को खंगालने की कला, शब्दों का सटीक व धारदार प्रयोग, व्यंग्य में चिन्तन, जानकारी, विषय की समझ, विषय को प्रस्तुत करने का तरीके के साथ-साथ व्यंग्य सहज-सरल भाषा में प्रस्तुत करने की कला महागाथा स्वरूप में आनी चाहिए। हर व्यंग्य एक शोध है। इस बात को ध्यान में रखकर लिखा गया व्यंग्य ही मेरी दृष्टि में सार्थक व्यंग्य की श्रेणी आता है।

व्यंग्य आलेख

दूर के इतिहासकार

अनुराग शर्मा
पिट्सर्वग, पेंसिल्वेनिया
संयुक्त राज्य अमेरिका

अरे भाई, इसमें इतना आश्चर्यचकित होने की क्या बात है?जब दूर के रिश्तेदार हो सकते हैं, दूर की नमस्ते हो सकती है, दूर के ढोल सुहावने हो सकते हैं तो फिर दूर के इतिहासकार क्यों नहीं हो सकते भला?

साहित्य नया हो सकता है, विज्ञान भी नया हो सकता है। दरअसल, कोई भी विषय नया हो सकता है मगर इतिहास के साथ यह त्रासदी है कि इतिहास नया नहीं हो सकता। इतिहास की इसी कमी को सुधारने के लिए आपकी सेवा में हाजिर हुए हैं 'दूर के इतिहासकार'। यह एकदम खालिस नया आइटम है। पहले नहीं होते थे।

हजारों साल के इतिहास में ऐसे इतिहासकारों की कोई जानकारी नहीं है क्योंकि पुराने जमाने में अगर कोई इतिहासकार दूर का इतिहास लिखना चाहता भी था तो उसे पानी के जहाज की तलहटी में ठण्ड में ठिठुरते हुए तीन महीने की बासी रसद पर गुजारा करते हुए दूर देश जाना पड़ता था। सो वे सभी निकट की इतिहासकारी करने में ही भलाई समझते थे।

अब, आज के जमाने की बात ही और है। कंप्यूटर, इन्टरनेट, विकिपीडिया, मोबाइल ऐप, सभी कुछ तो मौजूद है आपकी मेज पर। कंप्यूटर खोला, कुछ अंग्रेजी में पढा, कुछ अनुवाद किया, कुछ सम्वाद किया, कुछ विवाद किया – लो जी तैयार हो गया 'दूर का इतिहास'। अगर फिर भी पन्ना खाली रह गया तो थोड़ा समाजवाद-साम्यवाद भी कर लिया। समाजवाद मिलाने से इतिहास ज्यादा कागजी हो जाता है, बिल्कुल कागजी बादाम की तरह। वरना इतिहास और पुराण में कोई खास अंतर नहीं रह जाता है।

जहाँ एक कार्टून बनाना तक किसी मासूम की हत्या का कारण बन जाता हो वहाँ दूर का इतिहास लिखने का एक बड़ा फायदा यह भी है कि जान बची रहती है। किसी बुजुर्ग शायर ने ठीक ही कहा है –
जान है तो दुकान है, वरना सब वीरान है।

नहीं समझ आया?अगर आसानी से समझ आ जाए तो सभी लोग नेतागिरी छोड़कर इतिहासकार ही न बन जाएँ?चलिए मैं समझाता हूँ, माना आप आसपास का इतिहास लिख रहे हैं और आपने लिख दिया कि पाकिस्तान एक अप्राकृतिक रूप से काट कर बनाया हुआ राष्ट्र है तो क्या हो सकता है?हो सकता है कि आप एके-४७ के निशाने पर आ जाएँ। दूर का इतिहासकार अपनी जान खतरे में नहीं डालता। वह पास की बात ही नहीं करता। वह तो ईरान-तूरान सब पार करके लिखेगा कि इस्राइल नाम की झील अप्राकृतिक है। अच्छा जी! इस्रायल एक झील नहीं समुद्र है?इतिहासकार मैं हूँ कि आप?यही तो समस्या है हम लोगों की कि किसी भी बात में एकमत नहीं होते हैं। अरे आज आप राजी-खुशी से मेरी बात मान लीजिये, कल तो मैं बयानबाजी, त्यागपत्र, धरना, पिकेटिंग, सम्मान-वापसी कर के खुद ही मनवा लूँगा।

देखिये आपके टोकने से हम खास मुद्दे से भटक गए। मैं यह कह रहा था कि अपने आसपास की बात लिखने में जान का खतरा है इसलिए 'दूर के इतिहासकार' अपनी मेज की दराज की नहीं बल्कि दूर-दराज की, मतलब-बेमतलब की बात लिखते हैं। कभी-कभी दूर-दराज की बात में भी खतरा हो सकता है अगर वह आज की बात है। इसलिए हर दूर का इतिहासकार न सिर्फ किलोमीटर में दूर की बात लिखता है, बल्कि घंटे और मिनट में भी दूर की बात ही लिखता है।

दूर के इतिहासकार होने के कई फायदे और भी हैं। जैसे कि आपकी गिनती बुद्धिजीवियों में होने लगती है। आप हर बात पर भाषण दे सकते है। अगर ज्यादा देर तक चमकते रहे तो हो सकता है पत्रकार बन जाएँ और अगर पत्रकार न भी बन सके, तो कलाकार बन सकते हैं और अगर वहाँ भी फिसड्डी रह गए, तो असरदार बन जाईये। असरदार यानी कि बिना पोर्टफोलियो का वह नेता जिसकी छत्रछाया में सारे मंत्री पलते है।

तो फिर कब से शुरू कर रहे हैं अपना नया करियर?

व्यंग्य संस्मरण

मदारी और बंदर

मोनिका अग्रवाल
मुरादाबाद
9568741931

आजकल रोज मीडिया बता रहा है कि डॉक्टर पेशेवर हो गये हैं! सरकार द्वारा डॉक्टर्स पर लगाम लगाने के सतत प्रयास किए जा रहे हैं।तो मैंने सोचा क्यों ना मैं भी थोड़ी समाज सेवा कर लूं। सरकार की नयी नीति के चलते, मैंने अपनी क्लीनिक के बाहर लगे साईन बोर्ड पर अपने नाम के नीचे एक छोटी सी पट्टिका और लगा दी। जिस पर लिखवा दिया निःशुल्क। ताकि कोई मुझ पर लालची चिकित्सक का आरोप न लगा सके!

एक बड़ा बक्सा क्लीनिक के बाहर रख दिया ,जिसमें मरीज अपनी श्रद्धानुसार कुछ धन अर्पित करते रहें, जिससे मेरी दाल रोटी चल सके।

कई दिनों तक यह कार्य क्रम चला।लेकिन जब ताला खोला तो लगा इससे ज्यादा धन तो मंदिर के बाहर बैठ जाती तो इकट्ठा हो जाता। बच्चों की तरफ देखा तो पाया वे भी बड़े उत्साह से बक्से की तरफ निहार रहे थे। लेकिन जब बक्से में नजर गई तो वे ऐसे मुंह बना रहे थे , जैसे पिज्जा की जगह छिपकली निकली हो । उनके आक्रोश की तीव्रता का अहसास मुझे , दरवाजे की आवाज से ही हो गया था !!

फिर मैंने सोचा ,चलो कोई नहीं । होम विजिट कर लिया करूँगी,जिससे कुछ तो राहत मिलेगी। वैसे भी मरीजों की सेवा करना समाज सेवा है और यह मेरा परम कर्तव्य है। मैं अपने कर्तव्य को कैसे भूल सकती हूं ?तख्ती पर लिखवा दिया कि मैं होम विजिट भी करती हूं । बिल्ली के भाग्य से छींका टूटा वाली कहावत जल्दी ही चरितार्थ हो गई। मैंने देखा एक कार मेरे दरवाजे पर आकर रुकी है। उसमें से एक औरत और एक आदमी जल्दी-जल्दी मेरी ओर भागे चले आ रहे हैं । मुझसे आकर बोले हम यहां से कुछ ही दूर रहते हैं। मेरी माता जी की तबीयत बहुत खराब है । किसी अस्पताल जाते तो समय लगता, इसलिए हम आपके पास आ गए हैं। आप हमारे साथ हमारे घर चलिए। माताजी का स्वास्थ्य चेकअप कर लीजिए। मेरा मन प्रसन्न हो गया और मैं तुरंत ही चलने के लिए तैयार हो गई ।जैसे ही मैं उनकी कार की तरफ बढ़ी, तो साथ में आई महिला ने तपाक से कहा , 'आप अपना वाहन ले लीजिए , ताकि आपको लौटते हुए कोई परेशानी ना हो' । मैंने मरे मन से अपना बैग उठाया और अपनी स्कूटी निकाली। कार के पीछे पीछे मैं अपनी स्कूटी चलाती रही और थोड़ी सी देर में ही उनका घर आ गया। जब उनके बड़े से आलीशान घर में पहुंची, तो वहीं दरवाजे पर दो कुत्ते बैठे हुए थे ।उनको देख कर ऐसा लगा, जैसे वह मन ही मन कुटिल मुस्कुराहट बिखेर रहे हो और मेरी हालत पर तरस खा रहे हो । एक कुत्ते का नाम था शेरू और दूसरे का नाम था वीरू। शेरू मुझे ऐसे सूंघ रहा था जैसे मैं उसके लिए भोजन हूं।उसके आंखों की चमक ऐसी प्रतीत हो रही थी कि वो वीरू से कह रहा हो , 'चल यार! आज का इंतजाम हो गया'। डर के मारे मेरी घिग्गी बन गई ।लेकिन तभी वही महिला ने कहा ,'चुपचाप अंदर चलिए। आप जरा सा भी हिचकेंगीं, तो आप पर टूट पड़ेगा '।

उफ्फफफ! आज कल के मॉल, थियेटर या सरकारी जगहों पर भी क्या सिक्योरिटी होगी ?जो उनके घर में उपलब्ध थी। आजकल फोर्स नहीं , हर जगह शेरू जैसे कुत्ते बैठे होने चाहिए जो कुछ भी गलत देखें, तो हाथो हाथ सजा सुना दें।

मैंने तटस्थ भाव से अपने आपको शेरू के हवाले कर दिया। फिर शेरू का निरीक्षण ओके हो जाने के बाद, मैं उस महिला के पीछे- पीछे बैग हाथ में लिए उनके घर के प्रवेश द्वार से होती हुई एक कमरे में दाखिल हुई। तो देखा, एक बड़े से बेड पर एक बुजुर्ग महिला लेटी हुई है । पहले उन्होंने मुझे ऊपर से नीचे तक देखा फिर अपने बहू बेटों को गुस्से से देखा ,मानो कह रही हों , कि आरक्षणवाली सीट से बनी है यह डॉक्टर? मेरे लिए क्या यही डहक्टर रह गई थी ?कोई और इससे अच्छी डॉक्टर नहीं थी क्या?ये किस बेवकूफ डॉक्टर को पकड़ लाये हो?

सच मानिए ऐसा महसूस हो रहा था , 'जैसे चिड़ियाघर में कोई एक और नया जानवर आया हो और बाकी सारे जानवर उसे हिकारत की नजर से देख रहे हो '।

जब मैं चेकअप कर रही थी, तो वह इस तरह से जवाब दे रही थी ,जैसे उनके मुंह में बोल ही ना हो और मुझे शब्द डालने पड़ रहे हों ।

मैंने जब उनसे पूछा आपको गैस तो नहीं बन रही है?तो उन्होंने मुझे ऐसे घूर कर देखा जैसे मैंने कोई गलत सवाल कर लिया हो और जब उनसे दोबारा वही प्रश्न पूछा , 'आपको माता जी, गैस तो नहीं बन रही है?'

तो उन्होंने घूरते हुए मुझे गुस्से में कहा, 'अरे डॉक्टरनी साहिबा एक काम करो! तनिक सीटी फिट कर दीयो , हमार नीचवा ! जब गैस बनत रहेगी य तब अपने आप ही मालूम होई जायेगा तुमको। उहं! पता नहीं कहां से आईं हैं'।

उनकी यह बात सुनकर उनके बेटा बहू, खिल्ली उड़ाने वाले तरीके से हंसे और मैं झेंप गई। मैंने अपने निरीक्षण के आधार पर कुछ अच्छी दवाइयां एक पर्ची पर लिख दीं। लेकिन पर्ची पकड़ने का तरीका बता रहा था कि, मेरी मेहनत व्यर्थ है। यह कुछ समय बाद चार टुकड़ों में बदल जाएगी ।

मैं बाहर निकली तो सज्जन ने फीस पूछी और मैं कुछ कहती उससे पहले ही महिला बोल पड़ी, ''अरे! यह तो समाज सेविका हैं। इनको फीस कैसी ?चलो अब ये हमारे घर तक आयीं हैं तो दे दीजिए सौ रुपए। वैसे वह भी बहुत है''।

उन्होंने एक १०० का नोट इस अंदाज में मेरी ओर बढ़ाया जैसे कोई वेटर

को टिप दे रहा हो और फिर वॉचमैन से कहा इन्हें , इनकी स्कूटी तक छोड़ आओ। बाहर गेट पर बैठे दो कुत्ते , अभी भी भौंक रहे थे । मैं अपनी जान बचाते हुए स्कूटी पर बैठ गई और स्कूटी से घर आ कर सांस ली। अभी घर पहुंचे हुए घंटा भर ही हुआ था , कि फिर वही महिला आते हुए दिखी। मैं उनके आने का कारण जान पाती उससे पहले ही उन्होंने आते ही बोलना शुरु कर दिया।

'कैसी दवाइयां लिखी हैं ।कहीं मिलने का नाम नहीं ले रही। डॉक्टरी वाक्टरी भी आती है या यूं ही फर्जी डिग्री ले ली है ? माताजी की हालत बिगड़ने लगी तो हमें दूसरे डॉक्टर के पास जाना पड़ा । अच्छा हुआ वहां पहुंच गए ।वरना तुमने तो ने मारने की कोई कसर नहीं छोड़ी थी'।

डॉक्टर का नाम सुनते ही मुझे समझ में आ गया । 'जो दिखता है वही बिकता है'। बड़े बड़े क्लीनिक रखने वाले, खूब सारी टेस्टिंग लिखने वाले डॉक्टर ही असल में डॉक्टर हैं । ऐसे में मेरा समाज सेवा का भूत मुझे जीभ चिढ़ा रहा था ।मुझे बचपन में देखा, बंदर और मदारी का नाच ध्यान आ गया, जिस में बार-बार मदारी डंडा मार के बंदर को नचाता है और उसे मजबूर करता है, अपने हिसाब से काम करने के लिये।आज की मौजूदा स्थिति भी वही है ।सरकार मदारी है और हम डॉक्टर बंदर । सरकार नियम बनायेगी और हम पालन करेंगे।

आलेख

अंगूठा छाप भयो सब जग जानी

प्रो० डॉ० अजय जोशी
सम्पादक
बिस्सों का चौकए बीकानेर
09414968900

ये शीर्षक देख कर आप चौंक तो नहीं गए। आप सोच रहे होंगे कि जब सारी दुनिया में पढ़ाई लिखाई पर बल दिया जा रहा है सरकारें अरबों खरबों रुपये लोगों को शिक्षा पर खर्च कर रही है लोगों को साक्षर बनाने पर बल दे रही है तो सारे जग के अंगूठा छाप बनने की बात कहाँ से आ गई। हम अंगूठा छाप युग से मुश्किल से तो निकले हैं और आप हमें वापस उसी तरफ वापस ढकेल रहे हैं।

आपकी बात सो टके सही है। मेरा यह मानना है कि हर युग में अंगूठे का महत्त्व रहा है। महाभारत युग में अंगूठा खासा महत्त्वपूर्ण रहा है। गुरु द्रोणाचार्य ने एकलव्य का अंगूठा ही गुरु दक्षिणा में लिया था तभी अर्जुन सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर बन सका। अंगूठे का महत्व आज के युग में भी कम नहीं हुआ है बल्कि यों कहें की बढ़ता जा रहा है । अंगूठा कई कामों में आने लगा है। दूसरों को अंगूठा दिखाने में इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती हैं। बाबाजी के ठुल्लू में भी पूरे हाथ के साथ अंगूठा ही काम में आता है। आज सोशल मीडिया का दौर है इसमें किसी की चीज फोटो या पोस्ट को पसंद करना हो, तो सीधे अंगूठे का चिह्न काम में आता है। नापसंद करने के लिए भी अंगूठा ही काम में आता है, चाहे उसको उल्टा ही क्यों न करना पड़े। किसी काम को नहीं करना हो तो भी अंगूठा ही दिखाना पड़ता है। जीतने वाले खिलाड़ी को भी अंगूठा दिखा कर ही उसका उत्साह बढ़ाया जाता है । हारने वाले को अंगूठा दिखा कर ही चिढ़ाया जाता हैं। इसलिए अंगूठे का महत्व कभी भी कम नहीं हुआ । लेकिन 'अंगूठा छाप' की छाप से हम जरूर मुक्त हो रहे थे ।

आज शिक्षा के प्रचार प्रसार ने हमें तकनीक और डिजिटल युग में लाकर खड़ा कर दिया है। हमने जलाए थल और वायु सभी को जीत लिया है। अब सारी दुनिया हमारी मुट्ठी में है। हमने बहुत सी भाषाएँ इजाद कर ली है हम लिखने पढ़ने में बहुत होशियार हो गए हैं इसलिए हम अपने सिग्नेचर करना अच्छी तरह से जानते है हमारे पास इसके लिए बढ़िया से बढ़िया पेन भी है इसलिए हम अंगूठा छाप क्यों बने तो भाई आपसे यही कहना है कि यह दुनिया गोल है । हमने तकनीक का विकास किया, तकनीक ने हमें सुविधाएं दी और हमारा जीना आरामदायक बनाया। हम एक इशारे से सब कुछ कर सकते हैं। यही तकनीक हमें अंगूठा छाप बनाने की दिशा में धकेल रही है। अंगूठा लगाने की शुरुआत आधार कार्ड ने कर दी है अब बहुत सी जगहों पर अंगूठा ही चलता है हस्ताक्षर नहीं। ऑफिस में पहले हाथ से हस्ताक्षर करते 10 -20 मिनट देरी होने पर पहले का टाइम लगा देते थे । कब आते जब जाते पता नहीं चलता सब चल जाता था । कई दिनों साइन एक साथ करने से भी चल जाता था। कई जगहों पर केवल हस्ताक्षर करने ही जाना होता था। कई बार अपने हस्ताक्षर दूसरे से करवा कर ही काम चला लेते थे, पर इस तकनीकी विकास ने ये सब सुविधाएं खत्म कर दी है। हमें वापस अंगूठे के दौर में लाकर खड़ा कर दिया हैं । अब बड़े बड़े लोगों को अंगूठा लगाना पड़ता है।अंगूठा लगते ही समय भी अंकित हो जाता है अब लेट कैसे आएं। बहुत सी संस्थाओं में वापस घर जाते समय भी अंगूठा लगाना पड़ता है इसलिए जल्दी जाना भी संभव नहीं हो पाता।आने और जाने के टाइम के बीच में कहीं घूम घाम कर भले ही अपनी थोड़ी आत्म संतुष्टि कर लो।

इस अंगूठे ने अच्छे खासे पढ़े लिखे व्यक्ति चाहे वह पीएचडी हो या डीलिट या अनपढ़ अंगूठा टेक, किसी में कोई फर्क नहीं छोड़ा है। सबको अंगूठा लगा कर ही अपनी उपस्थिति दर्ज करानी पड़ती है। एक मायने में यहाँ पूरा समाजवाद ला दिया है, चाहे पूरी दुनिया में समाजवाद का कोई नाम लेवा नहीं बचा हो। यह अंगूठा अब सब जगह जरूरी हो रहा है। हाजरी लगाने के अलावा मोबाइल फोन की नई सिम लो तो अंगूठा ऑनलाइन भुगतान करो तो अंगूठा, बैंक का अधिकारी कोई एंट्री करे तो अंगूठा, मोबाइल फोन का लॉक खोलना हो तो अंगूठा। मैं अभी इस व्यंग्य को मोबाइल पर टाइप कर रहा हूँ, तो भी अंगूठा ही काम आ रहा है। सब जगह अंगूठे का ही दौर है। आगे भी न जाने कहाँ कह अंगूठा लगाना पड़ेगा। इसलिए हम सभी पढ़े लिखों का सारा जग अंगूठा छाप बना जा रहा रहा है।

आलेख

व्यंग्य मूल रुप से आलोचना का काम करता है

के. के. अस्थाना

वैसे तो व्यंग्य स्वयं ही विरोधाभासों और अन्तर्विरोधों की उपज है। साहित्य की दूसरी विधाओं वाले इसे 'विधा' नहीं मानते। कई व्यंग्यकार स्वयं भी इसे विधा नहीं, मात्र शैली मानते है। सम्भवतः इसका अपना कोई 'सौन्दर्य शास्त्र' भी नहीं हैं। कोई आलोचना के मापदण्ड नहीं है। व्यंग्य फिर भी है। व्यंग्य फिर भी रहा है। व्यंग्य फिर भी रहेगा। विरोधाभास और अन्तर्विरोध ही इसकी जमा पूँजी है।

व्यंग्य के कोई तय 'नियम' तो हैं नहीं । न कोई एक निश्चित 'फॉर्मेट' है। व्यंग्य निबन्ध से लेकर व्यंग्य नाटक, व्यंग्य कहानी और व्यंग्य उपन्यास कुछ भी लिखा जा सकता है। यही कारण है कि कई उपन्यासकार अपने व्यंग्यात्मक उपन्यास को 'व्यंग्य उपन्यास' कहे जाने पर खुद को सीमित किया जाना महसूस करते हैं। इसे स्वीकार नहीं करते। सम्भवतः उनके अनुसार उपन्यास का उद्देश्य बड़ा होता है। जो कि वास्तव में होता भी है। वह एक साथ बहुत सारी बातों को रेखांकित करता है। किसी विचार या विचारधारा को आगे बढ़ाना उसका उद्देश्य हो सकता है। किसी भी साहित्य का अन्तिम और अन्तर्निहित उद्देश्य जीवन की सुन्दरता को संवर्धित करना होता है। उपन्यासकार एक लम्बे चौड़े कथानक के साथ यह काम करता है। एक कहानी में पिरोकर एक तरह से उदाहरण के साथ गम्भीरता पूर्वक अपनी बात कहता है।

होता तो व्यंग्य का भी अन्तिम और अन्तर्निहित उद्देश्य यही है। उसका भी उद्देश्य बड़ा होता है। परन्तु इस लक्ष्य तक पहुँचने का उसका मार्ग 'व्रक' होता है। वह उन बातों को रेखांकित करता है जो जीवन को सुन्दर बनाने के मार्ग में 'बाधक' हो सकती है। वह 'सुन्दरता' के लक्ष्य की प्राप्ति के लिये 'असुन्दर' की ओर इशारा करता है, ताकि उसे समाप्त किया जा सके। ''यद भद्रम् तन्न आसुव'' की स्थिति तक पहुँचने के लिये 'अभद्र' की पहचान आवश्यक है। व्यंग्य इसकी पहचान ही नहीं कराता है, बल्कि उस पर प्रहार भी करता है। व्यंग्य एक प्रकार से मूल रूप में आलोचना का काम करता है।

चूँकि प्रहार करना या छिद्रान्वेषण करना नकारात्मक काम माना जाता है। समाज में छिद्रान्वेषियों को बहुत सम्मान से नहीं देखा जाता। इसलिये उपन्यास, कहानी या कविता की तरह व्यंग्य, प्रथम दृष्टया जीवन में जो भी सुन्दर है उसे बढ़ाता हुआ या संवर्धित करता नहीं लगता। व्यंग्य में 'साध्य' और 'साधन' का यह अन्तर्निहित विरोधाभास है। अभीष्ट सकारात्मक है। उद्देश्य महान है। परन्तु 'अप्रोच' नकारात्मक स्वरूप लिये है। इसे विचार और शिल्प का तो नहीं साध्य और साधन का अन्तर्विरोध कह सकते हैं। इसे विधा कहें, शैली या शिल्प कहें पर इसी अन्तर्विरोध की उपज है 'व्यंग्य'। आलोचना अपनी नकारात्मकता के कारण अक्सर ग्राह्य नहीं होती है। व्यंग्य आलोचना का वह स्वरूप है जो न केवल ग्राह्य होता है, अपितु इसके उलट 'प्रिय' होता है, लोकप्रिय होता है। किसी व्यंग्य कार की सफलता इसी बात में होती है कि वह आलोचना जैसे नीरस और नकारात्मक कार्य को सरस और सकारात्मक बना दे।

व्यंग्यकार के सामने बड़ी चुनौती होती है कि लिखे तो विरोध में, पर वह विरोध न दिखे। वह बुरा मानने वाला लिखे, पर जिसे बुरा लगने वाला है वह 'वाह' कह उठे। वह 'जजमेन्टल' रहें, पर ऐसा दिखे नहीं। वह चिकोटी काटे पर गुदगुदाते हुए दिखे। इतने सारे विरोधाभासों को साधने के लिये उसके पास मात्र एक हथियार है। और वह है उसका 'शिल्प'। शिल्प यानी भाषा और शैली। शिल्प यानी 'अन्दाजेबयाँ'। शिल्प मतलब कितना शब्दों में कहना है और कितना बिना कहे कहना है, कितना इशारों में कहना है। कितना बिना इशारा किये भी कहना है। क्या वक्रोक्ति में कहना, क्या अन्योक्ति में या किस बात को अविधा में कहते हुए भी व्यंग्य बना देना है।

एक' व्यंग्य' का दूसरे लेखक के 'व्यंग्य' से अलग होना ही उसकी अपनी पहचान है। उसका अन्तर्विरोध कई बार उसे 'क्लास' प्रदान करता है। 'व्यंग्य' में कई बार 'सरप्राइज' यानी विस्मय का तत्व भी बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। बड़ी 'रेन्ज' होती है 'व्यंग्य' में। मुख्य आख्यान के साथ किसी 'उपाख्यान' पर किसी भी गहराई तक, किसी भी दूरी तक जाकर फिर वापस मूल बिन्दु पर लौट सकते है। यह बात भी 'व्यंग्य' को साधारण आलोचना से अलग करती है। रोचक "शैली के साथ सटीक भाषा का होना भी अच्छे व्यंग्य के लिये अति आवष्यक है। 'शैली' और 'भाषा' के मेल को 'शिल्प' कह सकते हैं। जहाँ विचार और शिल्प का अन्तर्विरोध होगा, वहाँ अच्छा व्यंग्य नहीं बन सकता। अच्छा व्यंग्य तभी बन पड़ता है जब 'विचार' और 'शिल्प' में सामंजस्य हो।

व्यंग्य के साथ हास्य वैसे ही जुड़ा है जैसे ईर्ष्या के साथ द्वेष ! जैसे गुलाबों के साथ सिताब, जैसे दाना के साथ पानी । व्यंग्य के साथ 'हास्य' की मात्रा कितनी हो, यह व्यग्यकार के ''शिल्प' पर निर्भर करता है। विषय के अनुसार सही और सटीक भाषा का चुनाव भी 'शिल्प' का हिस्सा है। जब तक 'शिल्प' और 'विचार' में आपस में तादात्म्य नहीं होगा, तब तक असरदार तरीके से विचार सम्प्रेषित नहीं हो सकता। यह बात सभी विधाओं पर लागू होती है, व्यंग्य पर खास तौर से।

'विचार' के साथ' शिल्प' का तालमेल बिठा लेने वाला व्यंग्यकार ही सफल और सार्थक व्यंग्य लिख सकता है। उचित 'शिल्प' के प्रयोग से ही 'विचार' सही परिप्रेक्ष्य में और सही अर्थों में सम्प्रेषित हो सकते है। 'शिल्पगत' वैविध्य ही व्यंग्य को कालजयी बनाता है। जहाँ विचार और शिल्प में अन्तर्विरोध बना रह गया, वहाँ व्यंग्य वास्तव में 'व्यंग्य' न होकर आलोचना अथवा टिप्पणी बन कर रह जाता है। वास्तव में देखा जाये तो व्यंग्यकार की असली प्रतिभा यही है कि वह विचार और शैली के अन्तर्विरोध को कितनी हद तक साध पाता है। यही प्रतिभा उसे टिप्पणी कार से व्यंग्यकार बनाती है।

बतियाने का हुनर

मीना पाण्डेय
साहिबाबाद एगाजियाबाद ।२०१००५
मोबाइल ।९८९१५४२७९७

उस दिन गायत्री के यहाँ से लौटकर मैंने अपनी पुस्तकों की सुसज्जित अलमारी अस्त-व्यस्त कर दी। यही होता है मेरे साथ, जब लोग बोलते हैं उन्हें चुपचाप सुनना अच्छा लगता है और ये सोचना भी की काश मैं भी ऐसे ही तरह-तरह की दुनियादारी की बातें इतने चुटीले अंदाज में कर पाती । शायद यही कारण है कि अपनी उम्र की अन्य महिलाओं को मेरी सीधी सपाट बातों में कोई रस नहीं मिलता ।अब समझ में आने लगा है की लम्बी-लम्बी मसालेदार बातों को एक सपाट पंक्ति में बोल देने की मेरी आदत ही मुझे महिलाओं की टोली में अरोचक बना देती है। कब, क्या ,,कहाँ से बात शुरू की जाये, मेरे लिए सदैव सबसे बड़ा प्रश्न रहा है। अतः कुछ आत्मीय जनों

को छोड़कर क्या बोलूं, वाली स्थिति मेरे साथ गाहे बगाहे आ ही जाती है। अब कल की ही बात है, बस स्टॉप पर स्कूल बस की प्रतीक्षा करती महिलाओं की टोली खूब हँस-हँस कर बतिया रही थी। 'हेलो, हाय के बाद जब मैंने बोलना शुरू किया, तब पूछ बैठी ।बस नहीं आयी अभी।

नहीं आयी भई । नहीं आयी, तुम्हें दिखता नहीं क्या - तभी खड़ी हूँ नहीं तो क्यों खड़ी रहती।

नहीं! ये उत्तर उन महिला का नहीं था। उन्होंने तो न में सर हिला दिया। जवाब तो मेरी न समझी में दिया, मुझे पलटकर, ये भी कोई पूछने की बात थी कुछ ढंग का पूछती कुछ ऐसा जिससे अगली किसी बात का सिरा खुलता जिस पर सजी-संवरी बाफुरसत महिलाएं ठहाका लगा पाती और बस के आने तक कुछ वक्त निकल जाता।

बहरहाल मैं भी एक सामाजिक प्राणी हूँ, समाज में उठना - बैठना लोगों से बात करना, घुलना-मिलना मुझे भी अच्छा लगता है। पर जाने क्या बात है कि बात नहीं हो पाती। अन्य औपचारिक मुलाकातों में तो मैं निर्भीकता से अपनी बात रखती रही हूँ , महिलाओं की टोली में ही जाने क्यों हवा खराब हो जाती है और ऐसी किसी भी मंडली से लौटकर सीधा अपनी पुस्तकों की अलमारी खंगालती हूँ। शायद कहीं, किसी ने लिखा हो, बात कहाँ से शुरू की जाये।

इस मामले में कुछ लोग बाजी मार गए हैं । बोलने बतियाने में इनका कोई जवाब नहीं होता। ऐसे लोग आपके मुँह से बातें उधार लेकर भी अपना तमगा लगाकर बेच देते हैं। कुछ लोगों को ये गुण ईश्वर उपहार में मिलता है और कुछ एक को विरासत में। एक बात को तीन-तीन बार वो भी पूरे आत्मविश्वास से कहने के हुनर का जवाब नहीं। इन से बात बनाने में कोई दो हाथ कर के तो देखे , मजाल है उनके बतियाते कोई अपनी बात बीच में घुसेड़ सके। गलती से कहीं फोन लगा बैठे तो जनाब किसकी मजाल के उनके बोलते एक शब्द भी बोल पाए, फोन रखने की घोषणा के बाद भी बोलते रहने का फितूर भी लाजवाव ही ठहरा। कभी-भार उन्हें टोककर भी देखिए पूरी की पूरी मार्केटिंग तकनीक समझा देंगे आपको ये अपनी बात पूरी रखनी है चाहे जैसे भी। मगर हमारी तरह क्या बोलूं और कब इस उलझन से, तो ये खानदानी रोग बेहतर है और हमारे जैसे सामाजिक मौनियों के लिए तो ये रोग कहाँ हुआ, खानदानी हुनर हुआ।

अब बात जहाँ बात की है तब बात-बात में भी फर्क है जनाब। कुछ बातें तरकस में से तीर की तरह छूटती हैं और जाकर बींध देती है सामने वाले का सीना, कुछ बातें उबलते माड़ में से भाप सी उठकर पलभर में लोगों के नथुनों तक पहुंच जाती हैं। कुछ बातें गरीब की रोटी सी हलक में ही अटक कर रह जाती हैं, कभी नीचे नहीं उतरती और कुछ बातें पुराने संदूक के उजाड़ कोने में दुबकी पड़ी रहती हैं ताउम्र। बातें गुलाब होती हैं। बातें काँटों सी चुभ भी जाती हैं और जुगनू की तरह अँधेरे में रास्ता भी दिखाती हैं। बात ।बात में फर्क तो यकीनन है साहब। खैर बात न कर पाने वालों को ईश्वर ने लिखने का हुनर बक्शा है। वहां नहीं तो यहीं दो-दो हाथ सही।

कहानी

मेरा कसूर क्या है

संजय वर्मा दृष्टि
शहीद भगत सिंह मार्ग, मनावर (धार)
98993070756

बुजुर्गो का आशीर्वाद ,सलाह सदैव काम आती है। ये शायद उनके अनुभव का ऐसा अनमोल खजाना होता है। जिनको पीढ़ी दर पीढ़ी एक दूसरे को देते है । कुछ लोग उनकी नेक सलाह को ठीक तरीके समझ से नहीं पाते या उनका ध्यान कही और रहता है । चित्त को स्थिर रखना अपनी सोच को सही लक्ष्य दिलाता है । यही बातें स्कूल में मास्टरजी भी बताते थे । अक्सर कई बार ऐसा हो जाता है कि सामने वाला क्या सोच रहा है या फिर हम उसी अंदाज में उसे देख रहे है, मगर उसके बारे में सोच नहीं रहे है द्ययानि ध्यान कही और है। ऐसे में सामने वाला कोई नई बात सोच लेता है। बात को पहले समझे बगैर दूसरों को कह देना । एक बाबूजी ने साहब के बंगले पर जाकर बाहर खड़े नौकर से पूछा-साहब कहाँ है ? उसने कहा गए यानि उसका मतलब था कि साहब मीटिंग में बाहर गए । बाबूजी ने ऑफिस में कह दिया कि साहब गए। इस तरह उड़ती - उड़ती खबर ने जोर पकड़ लिया । कोई माला, सूखी तुलसी ,टॉवेल आदि लेकर साहब के घर के सामने पेड़ की छाया में बैठ गए । किंतु घर पर रोने की आवाज भी नहीं आ रही थी । सब ने खिड़की में से झाँक कर देखा । कोई लेटा हुआ है। उस पर सफेद चादर ढकी हुई थी । सब गए और साथ लाए फूलों को उनके ऊपर डाल दिया । वजन के कारण सोये हुए आदमी की आंखें खुल गई । मालूम हुआ कि वो तो साहब के भाई थे, जो उनसे मिलने बाहर गाँव से रात को ही आये थे । सब लोग असमझ में थे कि बाबूजी से नौकर ने बात समझे बगैर सही तरीके से नहीं की । इसमें बाबूजी का कसूर नहीं था। कुछ दिनों बाद बाबूजी रिटायर होकर अपने गांव चले गए । गाँव में उन्हें वहां के लोग नान्या अंकल कह कर पुकारते थे । गाँव में रिवाज होता है की मेहमान यदि किसी के भी हो अपने लगते है। गाँव में उन्हें अपने घर भी बुलाते है फिर मेजबान को भी उनके परिचय हेतु बुलवा लेते है। एक वाकया याद आता है कि- गर्मी की छुट्टियों में मेहमान आये ,बुरा न लगे इसलिए सामने वाले अंकल जो की बाहर खड़े थे। उन्होंने ही हमारे घर का पता मेहमानों के पूछने पर बताया था उन्हें भी गर्मी के मौसम में ठंडा पिलाने हेतु पप्पू को दौड़ा, दिया कहा कि-'जा जल्दी से नान्या अंकल को बुला ला'। मेहमान कहाँ से आये कि रोचकता समझने एवं आमंत्रण की खबर पाकर वो इतना सम्मानित हुए जितना की कवि या शायर कविता, गजल पर दाद बतौर तालियाँ और वाह -वाह के सम्मान से जैसे नवाजा गया हो।

जैसे ही नान्या अंकल को मेहमानों के सामने भाभी जी ने नींबू का शर्बत दिया। शरबत का गिलास होठों से लगाया तो नान्या अंकल कि आँख दब गई। कसूर आँख का नहीं था सोच शायद महंगाई के मारे शक्कर के भाव बढ़ गए हो इसलिए शक्कर ही कम डाली हो। दूसरा घूंट भरा तो फिर आँख दब गई ,तब सभी ने देखा और मन ही मन कहा कि- शर्मो हया की भी हद होती हैं।

नान्या अंकल ने कहा- भाई शरबत बहुत ही खट्टा है, पीने से मेरे दांतों को बहुत तकलीफ होती है। खटाई ज्यादा होने पर तो हर किसी की आँख दब ही जाती है ना। मेरी नजर तो पहले ही कमजोर है। जरा इमली को ही लीजिये,द्य इमली का नाम सुनने पर या चूसने पर सामने वाले के मुंह में भी पानी आ जाता है और जम्हाई लोगे तो तो सामने वाला भी
मुँह फाड़ने लग जाता है । कई लोग महत्त्वपूर्ण मीटिंगों में आप को सोते या जम्हाई लेते मिल ही जायेंगे। ऐसा शरीर में क्यों होता है ये मै नहीं जानता जो आप सोच रहे हो और ये भी नहीं जानता की मेरा कसूर क्या है ?

कई सालों बाद वही मेहमान फिर गाँव में आये तो उन्होंने नान्या अंकल को देखा जो की ज्यादा बुढे हो गए थे लेकिन अपने विचारों पर थे अडिंगा। उनकी नजरें भी कमजोर हो गई , किन्तु सामने वाले मेहमानों ने उन्हें पहचान ही लिया। वे एक दूसरे के कानों में खुसर-पुसर कर कहने लगे -यही तो है अंकल। उन्होंने सोचा की शायद उस समय हमसे ही कोई समझने की भूल हो गई हो क्षमा मांगने का और मन की बात कहने का यही मौका है ।

सभी ने नमस्कार कर पूछा कि-अंकल हमें पहचाना? नानिया अंकल लकड़ी के सहारे चलकर बूढ़ी आँखों से देखकर नजदीक आकर कहा- बेटा मुझे दूर से कोई दिखाई नहीं देता द्यवे बहुत पास आकर देखने लगे। इतने में फिर से आँख दब गई अब कसूर खटाई का नहीं था बल्कि हवा के झोंकों का था जो धूल भरी आंधी के साथ तिनके को धुल के कणों के साथ उड़कर लाया था जो उड़ कर नान्या अंकल की आँखों में सीधे जा घुसे थे। मौसम के मिजाज जो अक्सर गर्मियों के दिनों में धुल भरी आंधी चलती है को मेहमान समझ नहीं पाए । नान्या अंकल भी सामने वाले को समझा नहीं पाए और ना ही मेहमानों ने सही बात को ठीक तरीके से समझने की कोशिश की। नान्या अंकल मन ही मन सोच रहे थे की -आखिर मेरा क्या कसूर है ? जो मैं कह रहा हूँ ये उसे समझ नहीं पा रहे है। उधर रेडियो पर मौसम की भविष्यवाणी हो रही थी कि-मौसम आज खराब रहेगा मगर ये समझ नहीं रहे थे और रेडियो गाने भी बजा रहा था कि-'इन आँखों की मस्ती के दीवाने हजारों है । मगर फिर भी नहीं समझ पा रहे थे की क्या रेडियो भी इन पर कटाक्ष कर सकता है। अब नान्या अंकल चुप थे और मेहमान असमझ में थे, वे अब सोचने लगे कि -अब कसूर किसका है ?नानिया अंकल को भी अचरज हुआ और बुरा भी लगा ।चलते समय कुर्सी की ठोकर लगी और गिरने लगे तभी मेहमानो ने उन्हें संभाल लिया व सभी ने कहा अंकल कहा जा रहे हो, उन्होंने कहा कि बच्चों, मैं अपना चश्मा लेने घर जा रहा हूँ और मन सोचने लगे की मेरा क्या कसूर है ?ये लोग वाकई ना समझ है जो बुजुर्गों की बातों को ठीक तरीके से नहीं समझते ।

झूठ बराबर तप नहीं

गोविन्द शर्मा
ग्रामोत्थान विद्यापीठ, संगरिया
हनुमानगढ़ (राजस्थान)
मोबाईल 09414482280

महासंतों ने तो बारबार कहा है, पर आपने सुना नहीं। इसलिये मुझे कहना पड़ रहा है-झूठ बराबर तप नहीं, सांच बराबर आंच।

मित्रो, झूठ की महिमा अपरंपार हैं आज तक कोई ऐसा नहीं हुआ, जिसने झूठ न बोला हो। फिर चाहे वह युधिष्ठिर हो या कोई और सत्यवादी। सबके मुंह से झूठ निकलता है, सब झूठ बोलते हैं। सच बोलने के लिए सौ नाटक करने पड़ते है। कसम खाओ, सौगंध लो, 'शपथ उठाओ, गले पर या दिल पर हाथ रखो। झूठ बड़ी सहजता से भीतर से बाहर आता है। उसकी तरलता ,सरलता देखने योग्य होती है। क्योंकि झूठ मौलिक होता है और सत्य उसका विकृत रूप।

कहते हैं कि बहस करने वालो को झूठ का लाइसेंस मिला होता है, इसीलिये वहां बोलने से पहले उनसे किसी धर्मग्रंथ पर हाथ रख कर 'शपथ नहीं दिलवाई जाती। एक ने तो सच्ची कसम खाकर मुझे यह सच बात बताई कि सच के पांव नहीं होते। उसे जब तक झूठ के पांव नहीं लगाये जाते, वह चलता ही नहीं। सच को सच साबित करने के लिये बहुत झूठ बोलना पड़ता है, सच का गुलगुला झूठ की चाशनी में डुबोने पर ही न्याय के गले उतरता है।

नेताओं को ही लो । एक पार्टी वाला कुछ कहेगा तो उसका विरोधी तुरंत कह देगा, यह झूठ बोल रहा हे। ये लोग एक दूसरे को इतनी बार झूठा कहते है कि लगता है यह बोलते नहीं, झूठ बोलते हैं। यह पार्टी अपना चुनाव घोषणा पत्र जारी करती हैं, तो सामने वाली पार्टी उसे बिना पढ़े, बिना सुने झूठ का पुलिंदा बता देती है। एक दूसरे का बजट झूठा, श्रेय लेना झूठा, आरोप लगाना झूठा। क्यों?क्योंकि सत्य की बजाय झूठ की महिमा अपरंपार होती है। इसलिये कोई नेता यह बर्दाश्त नहीं करता कि उन पर सच्चा आरोप लगाये। सब चाहते हैं, झूठे आरोप लगते रहें, प्रचार मिलता रहे। लेखक लोग एक दूसरे को महान बताते भी हैं और उसकी महानता को झूठा भी बताते हैं, इसके लिये सही जगह, पीठ पीछे मानी गई है। खासतौर पर पुरस्कार पा जाने वाले लेखक के साथ ऐसा ही होता है। एक ने बताया कि इस क्षेत्र में आगे बढ़ने का एक रास्ता यह भी है कि वरिष्ठों के मुंह पर ही उनकी प्रशंसा की झूठी चपत लगाते रहें। दुनिया भर में राजधानियों में कुछ सदन होते हैं, जो केवल बहस के लिये स्थापित होते हैं। वहां इधर वाले अपनी तारीफ करते हैं और उधर वाले उनकी निंदा। तारीफ और निंदा में जितना ज्यादा झूठ होता है, वह उतनी ज्यादा असरदार और रसदार होती है। कई वहां झूठ बोलना भूल जाते हैं। तब उन्हें अपना बोला हुआ वापस लेना पड़ता है। सच बोलने वाले का वहां कोई साथ नहीं देता, झूठ बोलने वाले के समर्थन में पचास खड़े हो जाते हैं, 'शोर 'शुरू कर देते हैं। सत्य हमेशा अल्पमत होता है। बहुमत तो झूठ के पास होता है। कौन बनेगा करोड़पति में और कई परीक्षाओं में ऐसे प्रश्न होते है कि उनके साथ चार उत्तर होते है उनमें से एक सच्चा बाकी झूठे। हुआ ना झूठ का बहुमत?आप किसी सत्ता वंचित से किसी भी युग में पूछ लें, यही कहेगा कि बहुमत वाले सभी झूठे हैं। झूठ वाला ही सरताज होता है। एक पुराने फिल्मी 'लोक में गाया भी गया है- सैंया झूठों का बड़ा सरताज निकला। कितने ही महानुभाव होते हैं जो 'शांति के नाम पर कबूतर उड़ाते हैं और फिर उन्हीं हाथों से पेन चला कर बम फोड़ने, मिसाइल चलाने के आदेश देते हैं। यह झूठ काफी परिष्कृत होता है और सभी देशों द्वारा मान्यता प्राप्त होता है।देशों के पास अपने अपने राजनयिक,कूटनीतिज्ञ, जासूस, विश्लेषक होते हैं। इन पेशों में वही सफल होता है, जिसके पास झूठ का अक्षय भंडार हो और इसे झूठ रूप में पेश करने की कला हो।

सोशल मीडिया आविर्भाव के साथ झूठ की महिमा बढ़ रही है,बढ़ती रहेगी। सिर्फ मीडिया के बारे में कुछ नहीं कहूंगा। उसके पास क्या होता है?वही जो आपने अभी सोचा हैं आपकी सोच सत्य है, उनके पास आपके बारे में बहुत असत्य है। कभी भी आपका ट्रायल कर आपको लटका सकते हैं।

इतिहास और इतिहासकार तो झूठे ही होते है। यह मैं नहीं कहता, यह खुद इतिहासकार ही कहते हैं कि उस दूसरे का लिखा इतिहास झूठा है, सच्चा तो वह है जो मैंने लिखा है। उस सच्चे को भी झूठा साबित कर दिया जाता है। पहले के इतिहास लिखने वाले तो कभी के ऐतिहासिक हो गये। आजकल तो लोग उनके लिखे का मन्तव्य अपनी मर्जी से निकाल कर एक दूसरे को झूठा-झूठा कह रहे हैं, लिख रहे हैं। इसे 'शोध, खोज, अन्वेषण जैसे भारी भरकम नाम देते हैं।

सत्य किसे कहा जाता है?स्वयं के सच बोलने को नहीं कहा जाता, बल्कि दूसरे के बोले को झूठ साबित करने को कहा जाता है। सत्य बोलने वाले पिटते देखे हैं। उन्हें तीर, तलवार, क्रास, जहर को भुगतना पड़ता है। इसीलिये तो कहते हैं- सांच को आंच ही आंच ।।।। वैसे झूठ पकड़ने की कवायद पर पुलिस, अदालत, अन्वेषकों के माध्यम से अपार फिजूलखर्ची की जाती है। झूठ 'शाश्वत सत्य है। झूठ को नकारना ही सबसे बड़ा झूठ है। झूठ बड़ा कीमती होता है। इसीलिये महात्मा लोग झूठ न बोलने का उपदेश देते हैं यानी कीमती चीजों से मोह मत करो। हम यही तो करते हैं। बच्चों के पीछे पड़े रहते हैं कि सच बोलो, सच बोलो। सच के साथ रहो। झूठ क्यों नहीं?क्योंकि झूठ बहुत कीमती होता है। बच्चों से गुम हो सकता है, कोई उनसे छीन सकता है। ऐसा होने पर कितना नुकसान होता है?

झूठ के बिना आप किसी भी रूप में सफल नहीं हो सकते। प्रेमी तो किसी

भी हालत में नहीं, यह झूठ ही होता हे जो आपके और आपकी प्रेमिका के मध्य अटूट नामक सीमेंट की आपूर्ति करता है। पति भी वही देव होते है जो बढ़िया झूठ का इस्तेमाल करना जानते हैं। पत्नी झूठ पकड़ने की मशीन होती है। सफल पति वहीं कहलाता है जो इस मशीन की परीक्षा में पास होता रहे।

सच बोलने में तकलीफ भी होती है और ऊर्जा भी खर्च होती है, जैसे व्यंग्य लिखने या पढ़ने में होती है। झूठ तो मुंह से ऐसे निकलता है, जैसे कवि के मुंह से कविता निकलती है, जैसे नेता से मुंह से भाषण निकलता है। सरलता अपनाइए, सफलता पाइए।

झूठ पर कोई 'शक नहीं होता, कोई किंतु परंतु नहीं होती, हर कोई विश्वास कर लेगा कि यह झूठ है। पर जब आप सच बोलते है तो लोग 'शक करते हैं कि पता नहीं झूठ कह रहा है या सच। सच को सच बताने के लिये कसमें खानी पड़ती हैं। क्या आपने कभी सच्चे रोगी के मुंह से धारावाहिक कराहट सुनी है?जबकि झूठे बीमार कितनी रोचक, लच्छेदार और प्रभावशाली हाय। हाय। करते हैं।

क्या किसी को बिना झूठ के अमीर होते देखा है?अमीर तो अमीर, आजकल गरीब भी बिना झूठ के नहीं हुआ जाता। देश में गरीबों को कई किस्म के दर्जे हासिल है। जैसे बी.पी.एल वगैरह। इन किस्मों का गरीब बनने के लिये कई किस्म के प्रमाण पत्र लेने-देने होते है। शपथ पत्र देने होते हैं। कइयों को केवल झूठ के सहारे गरीब होते देखा है। सरकारी माल मुफ्त लेने के लिये अपने बारे में दस किस्म की झूठ बताने पर ही काबिल गरीब माना जाता है। एक भी झूठा प्रमाण कम हुआ तो आप काबिल नहीं, रईस माने जायेंगे। फिर आप चाहे कितने ही रोटी-कपड़ा-मकान से वंचित हों, दंगल करते रहें, गरीबी का हक नहीं मिलेगा।

यह सब आपको बताने का मेरा उद्देश्य यह नहीं है कि आप झूठ बोलें। वह तो आपका अधिकार है। पर आप मेरा ख्याल भी रखें। झूठ बोलने के मेरे अधिकार की रक्षा में मेरा सच्चा साथ दें।

कविता

सुसंभाव्य

याद करता हूँ
उन दिनों को
हम गुजारे जिसे
आँसुओं की धार में
कहाँ कोई साथ था
बस अकेला
मझधार में मैं
ग्रीष्म की तपती
दोपहर को
दर्द की दु:खती रगों से
समय के सिलवटों में समाया
नंगी डाली के नीचे
बरगदी छाँव तले
तूफानों के बीच
मौन पडा़ जब
दुर्गम राहों को ताक–झाँक रहा था
तो फिर अंदर के
इन्सान को आते देखा
सुसंभाव्य के पन्नों को
पलट रहा था।

–: दयानन्द जायसवाल

गुजारिश

डॉ. अनुज प्रभात

हमें न धूप घमाता है
न बारिस भींगाता है
हमें तो सर्द हवा में भी
मजा जीने का आता है

हमें न आँधी उड़ाती है
न सेलाब बहाता है
हमें तो जंगलों,पहाड़ों पर भी
मजा चलने का आता है

हमें न रात उँघाती है
न कभी दिन अलसाता है
हमें तो घनें–अंधेरों मे भी
मजा रोशनी का आता है

हमें यहाँ न कोई रूलाता है
न यहाँ कोई हँसाता है
हमें तो गोली–बंदूक में भी
मजा फूल और काँटे का आता है

हमें न चाहत किसी के पूछने की
न चाहत किसी के चाहने की
हमें तो परवाह भी नहीं कहने–सुनने की
मजा हमें तो यहाँ जॉ लुटाने में आता है

हॉ, एक गुजारिश है दोस्तों
हम पर कोई सवाल न करना
हम सरहद पर रहने वाले
मजा शहीद होने में आता है।

–: पं दीन दयाल चौक
फारबिसगंज–854318
मो0– 9470023249
8797671020

कहानी

दुमदार जी की दुम

सुशांत सुप्रिय
सुशान्त सुप्रिय
वैभव खंड, इंदिरापुरम ,गाजियाबाद
मोबाईलः 7411969975

आज मैं आपको एक विश्व-प्रसिद्ध दुम की कहानी सुनाने जा रहा हूँ । यह कहानी किसी ऐरे-गैरे व्यक्ति की नहीं है । यह कहानी दुमदार जी की है ।

दुमदार जी का असली नाम कोई नहीं जानता । बचपन से ही दुमदार जी विलक्षण प्रतिभा के धनी थे । चमचागिरी, चापलूसी , चाटुकारिता और मक्खन लगाने में उनका कोई सानी नहीं थी । हैरानी की बात यह है कि उनके पिता बेहद ईमानदार और कर्तव्यनिष्ठ स्कूल-मास्टर थे, जो दुम हिलाने को पाप समझते थे । ऐसे परिवार में पैदा हो कर भी दुमदार जी ने हिम्मत नहीं हारी । दुम हिलाने की कला उन्हें विरासत में नहीं मिली थी ।यह कला उनकी जीन्स, में नहीं थी । उनकी आनुवांशिकी इससे वंचित थी । लेकिन उन्होंने इस अड़चन को अपनी सफलता की राह में रुकावट नहीं बनने दिया । अपने परिवेश और समाज से निरंतर शिक्षा ग्रहण करते हुए अंत में वे इतने बड़े दुमबाज बन गए कि लोगों ने उनका नाम ही दुमदार जी रख दिया । इस लिहाज से दुमबाजी में वे एक सेल्फ-मेड व्यक्ति थे ।

दुमदार जी प्रागैतिहासिक काल में पूर्वजों के पास पाई जाने वाली विलुप्त पूँछ हिलाने में माहिर थे । दुम हिलाने को फूहड़ सड़क-छापपने के टुच्चे स्तर से उठा कर उसे ललित-कला के स्तर तक पहुँचाने में श्री दुमदार जी का अद्‌भुत योगदान भुलाया नहीं जा सकता ।अखिल भारतीय दुमदार महासभा के पहले अधिवेशन में उनका ऐतिहासिक भाषण मील का पत्थर साबित हुआ । दुनिया के दुमबाजो, एक हो जाओ और दुम नहीं तो दम नहीं जैसी उनकी उक्तियाँ लोकप्रिय उद्धरण बन गए। सफलतापूर्वक दुम कैसे हिलाएँ शीर्षक वाली उनकी पुस्तक इतनी लोकप्रिय हुई कि उसे नेशनल बेस्टसेलर माना गया । इस पुस्तक के कई संस्करण निकले और दर्जनों भाषाओं में अनूदित हो कर इसकी करोड़ों प्रतियाँ बिकीं ।

लेकिन यह तो बाद की बात है । इसकी शुरुआत कैसे हुई वह भी किसी चमत्कार से कम नहीं था ।एक रात दुमदार जी सोने गए । सुबह उठने पर उन्होंने पाया कि उनकी दुम निकल आई है । यह खबर दुमबाजों के बीच हिलती पूँछ-सी फैली । इसे कुदरत का करिश्मा और भगवान् का वरदान माना गया इस महान दुम के दर्शन के लिए अपार जन-सैलाब उमड़ पड़ा । लोगों को आपस में यह कहते हुए सुना गया 'जरूर दुमदार जी ने पूर्व-जन्म में दुमबाजी के अच्छे कर्म किए होंगे । इसीलिए भगवान् दुमश्री महाराज ने उन्हें यह फल दिया है ।' इस तरह देखते-ही-देखते दुमदार जी जग-प्रसिद्ध हो गए । शोहरत के साथ सम्मान और धन भी आया । दुमदार जी के दिन फिर गए ।

इतिहास में कहीं ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता जब किसी आदमी की दुम निकल आई हो । लिहाजा अरबों में एक होने की वजह से दुमदार जी राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ख्याति-प्राप्त हो गए । उनकी महान दुम को राष्ट्रीय धरोहर की संज्ञा दी गई । उन्हें अनेक सम्मानों से अलंकृत किया गया । लालकीले की प्राचीर से प्रधानमंत्री जी ने राष्ट्र के नाम अपने सम्बोधन में दुमदार जी को दुम-विभूषण की उपाधि देने की घोषणा की । विपक्ष के नेता भला क्यों पीछे रहते । उन्होंने भी अपनी पार्टी के राष्ट्रीय अधिवेशन में दुमदार जी को दुम केसरी की उपाधि से नवाजा । राष्ट्रपति जी ने भी राष्ट्रपति-भवन के प्रांगण में आयोजित एक भव्य समारोह में महामहिम दुमदार जी को देश के सर्वोच्च सम्मान दुम-रत्न से अलंकृत किया । दुम-रत्न दुमदार जी, अमर रहें, अमर रहें के नारों से आकाश गूँज उठा ।

दुमदार जी की हिलती दुम की ख्याति दिन-दोगुनी, रात-चौगुनी बढ़ने लगी । सरकारी खर्चे पर करोड़ों रुपयों में उनकी दुम का बीमा कराया गया । उनकी दुम की सुरक्षा के लिए नेशनल सेक्योरिटी गार्ड के जाँबाज कमांडो नियुक्त किए गए । यूनिसेफ ने उन्हें अपना गुडविल अम्बैसेडर बना लिया । दुमदार जी की दुम को दुनिया का आठवाँ आश्चर्य माना गया ।विदेशी शासनाध्यक्षों के भारत आगमन पर दुमदार जी से मिलना उनके कार्यक्रम का अभिन्न भाग बन गया ।

हालाँकि कुछ लोग जरूर दबी जुबान से दुमदार जी की दुम को ईश्वर का दंड या दैवी प्रकोप बताते थे । पर ऐसे लोग केवल मुट्ठी भर थे । इन्हें विदेशी एजेंट या राष्ट्र-द्रोही कहा जाता था ।

एक बार दुमदार जी की महान् दुम को चोट लग गई । पूरा राष्ट्र हतप्रभ रह गया । लोग स्तब्ध और शोकाकुल थे । इसे दुमदार जी के विरोधियों का षड्यंत्र माना गया । मंदिरों, मस्जिदों , गुरुद्वारों और गिरिजा-घरों में दुमदार जी की दुम की सलामती के लिए विशेष प्रार्थना-सभाएँ आयोजित की गईं तथा नमाज पढ़ी गई । जगह-जगह हवन और यज्ञ किए गए । करोड़ों लोग दुमदार जी की दुम की सलामती का समाचार पाने के लिए रेडियो और टी.वी. से चौबीसो घंटे चिपके रहे । फेसबुक और ट्विटर पर लोगों ने इस के बारे में अपनी चिंता व्यक्त की । दुमदार जी की दुम की सलामती का समाचार आते ही जनता में हर्ष की लहर दौड़ गई । जगह-जगह मिठाइयाँ बाँटी गईं और पटाखे चलाए गए । उस रात हुई जबर्दस्त आतिशबाजी के आगे दीवाली की रात हुई आतिशबाजी भी फीकी लगने लगी ।

लिम्का-बुक वालों ने तो पहले ही दुमदार जी की महान दुम का उल्लेख अपनी रेकॉर्ड-बुक में कर लिया था । अब गिनीज-बुक वालों ने भी दुमदार जी का नाम अपनी रेकॉर्ड-बुक में दर्ज कर लिया ।

देखते-ही-देखते दुमदार जी पूरे राष्ट्र के लिए आदर्श, अनुकरणीय, श्रद्धेय और प्रतिमान बन गए । पूरा राष्ट्र प्रागैतिहासिक काल में पूर्वजों के पास पाई जाने वाली विलुप्त पूँछें हिलाने लगा । जो दुम-हीन थे, वे मिसफिट थे । समाज में दुम हिलाना सफलता की कुंजी थी । बल्कि दुम हिलाना हमारा राष्ट्रीय खेल बन गया था । यदि दुम हिलाने की प्रतियोगिता को ओलम्पिक खेलों में शामिल कर लिया जाता तो हम अवश्य ही इस प्रतियोगिता में स्वर्ण-पदक जीत जाते । उद्योग, व्यापार, शिक्षा-जगत और खेल-कूद हर जगह दुमबाजी का बोलबाला था । जो व्यक्ति अपनी विलुप्त पूँछ हिलाना नहीं जानता था, वह सफलता की दौड़ में सबसे पिछड़ जाता था । यह दुम हिलाने वाले चमचों, चाटुकारों, चापलूसों और मक्खनबाजों का जमाना था । कोई बॉस की कृपा-दृष्टि पाने के लिए दुम हिला रहा था, कोई पदोन्नति पाने के लिए दुम हिला रहा था । कोई सहयोगियों की जड़ काटने के लिए दुम हिला रहा था, कोई सत्ता के शीर्ष पर बैठने के लिए दुम हिला रहा था । किसी भी तरह सफल होने और दूसरों से आगे बढ़ने के लिए लोग थूक कर चाट रहे थे, बाप को गधा और गधे को बाप बता रहे थे । हिलती हुई दुमें ऑफिस और व्यापार चला रही थीं । हिलती हुई दुमें देश की सरकार चला रही थीं । लोग इतना ज़्यादा दुम हिला रहे थे कि भरी जवानी में शरीर से झुकते जा रहे थे ।

एक जमाने में दुमदार जी मेरे सहयोगी थे । वे मेरे ही ऑफिस में काम करते थे । तब वे एक महान् दुमबाज के रूप में जन-साधारण के मन में स्थापित नहीं हुए थे । अक्सर वे मेरे आगे-पीछे भी दुम हिलाते रहते थे क्योंकि उनके कई काम मेरे पास फँसे पड़े थे । बॉस के साथ मेरे सम्बन्ध अच्छे थे । इस कारण से भी दुमदार जी मेरी चापलूसी में जुटे रहते थे । समय बदला । बॉस का स्थानांतरण हो गया । नया बॉस आ गया । दुमदार जी के मुझसे सारे काम निकल गये । फिर तो मैं कौन और तू कौन ! दुमदार जी ने मेरी ओर झाँकना भी बंद कर दिया । उनके इस व्यवहार से मुझे ठेस पहुँची । मैंने दो-एक लोगों से इसका जिक्र किया । इस पर वे हँस कर बोले 'आप भी बिल्कुल दुमहीन व्यक्ति हैं ! अरे, दुमदार जी ने जो आपके साथ किया , इसी को तो दुमबाजी कहते हैं ! '

तो मैं बता रहा था कि यह दुमबाजी का जमाना था । पूरा देश दुमदार जी की हिलती हुई महान् दुम पर फिदा था । चमचे और चापलूस इतराए नहीं समा रहे थे , फूल कर कुप्पा हुए जा रहे थे । ऐसे माहौल में सरकार ने दुमदार जी की महान दुम के सम्मान में पाँच, दस और पंद्रह रुपयों के सुगंधित डाक-टिकट जारी किए, जिनमें दुमदार जी की दुम को कई मुद्राओं में दिखाया गया । साथ ही दुमदार जी की महान् दुम के सम्मान में विशेष सिक्के भी जारी किए गए जिन पर उनकी दुम की मनोहर छवि अंकित थी । रिजर्व बैंक के नोटों पर भी इस सम्मानित दुम के चित्र छपने लगे । दुमदार जी के चमचों ने उनके सम्मान में विश्व का सबसे विशाल मंदिर बनवाया जिसमें लाखों लोगों की मौजूदगी में दुमदार जी की एक दुम-कद प्रतिमा स्थापित की गई । वहाँ रोज सुबह-शाम पूजा-अर्चना और आरती होने लगी । देखते-ही-देखते उस मंदिर में करोड़ों रुपयों का चढ़ावा चढ़ने लगा और कुछ ही समय में दुमदार - स्वामी मंदिर में चढ़ने वाले चढ़ावे ने तिरुपति के मंदिर को भी पीछे छोड़ दिया ।

दुमदार जी के शिष्यों ने उनकी महान दुम के सम्मान में दुम चालीसा और दुम पचासा लिख डाली । देश के तमाम कवि, कहानीकार, गीतकार, संगीतकार और चित्रकार दुमदार जी की महान् दुम के महिमामंडन की नदी में स्नान करने लगे," दुम ही हो माता, दुम ही पिता हो, दुम ही हो बंधु, दुम ही सखा हो ।"इस तरह पूरे राष्ट्र का माहौल दुम-मय हो गया । हर व्यक्ति दुम-छल्ला बन कर घूमने लगा ।

दुमदार जी की महान दुम स्कूल-कॉलेजों के पाठ्य-क्रम का विषय बन गया । यहाँ दिमाग से नहीं, दुमाग से शिक्षा दी जाने लगी । परीक्षाओं में दुमदार जी और उनकी महान दुम के बारे में प्रश्न पूछे जाने लगे।

-- बताओ, दुमदार जी ने पहली बार दुम हिलाना कब सीखा?

-- दुम हिलाने के क्या लाभ हैं?उदाहरण सहित बताओ ।

-- दुम चालीसा और दुम पचासा के लेखकों के नाम बताओ तथा इन पुस्तकों से कुछ पंक्तियाँ उद्धृत करो ।

-- दुमदार जी एक सेल्फ-मेड व्यक्ति हैं । इस पर टिप्पणी लिखो ।

-- दुमदार जी ने दुम हिलाने की कला को फूहड़ सड़क-छापपने के टुच्चे स्तर से उठा कर उसे ललित-कला के स्तर पर पहुँचाया । इस विषय पर एक लेख लिखो । वगैरह ।

दुमदार जी की महान् दुम के सम्मान में विश्वविद्यालयों में दुम-पीठों की स्थापना हो गई जहाँ छात्रों को इस विषय पर एम.फिल. और पी.एच.डी. की डिग्रियाँ प्रदान की जाने लगीं । कई विद्वानों ने इस विषय पर डी.लिट. की डिग्री भी अर्जित की । बी.ए. और एम.ए. के स्तर पर दुमदार जी की महान दुम को एक विषय के रूप में पढ़ने पर छात्र-छात्राओं को छात्रवृत्तियाँ दी जाने लगीं ।

सरकार ने दुम हिलाने के अधिकार की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए राष्ट्रीय दुम आयोग का गठन किया । इसे कानूनी दर्जा देने के लिए सरकार ने अखिल भारतीय दुम-हिलाओ अधिकार संरक्षण विधेयक को संसद में प्रस्तुत किया जहाँ इसे दुम-मत से पारित भी कर दिया गया । सरकार ने संसद के संयुक्त अधिवेशन में देश में दुम-तंत्र को सुढ़ करने का अपना संकल्प दोहराया । सभी दल इस बात पर एकमत थे ।

कई वरिष्ठ फिल्म-निर्देशकों ने कई भाषाओं में दुमबाजी पर कई अच्छी फिल्में बनाईं जिन्हें बाद में दुम साहब मालके सम्मान भी मिला । इन फिल्मों में दिखाई जाने वाली दुमगिरी जनता में बेहद लोकप्रिय हुई । दुमबाजी के नये-नये हथकंडों को जन-जन तक पहुँचाने में इन फिल्मों का योगदान अभूतपूर्व है । इन में से कई फिल्मों में दुमदार जी ने बतौर नायक काम भी किया ।

बाजार में दुमदार जी के दुम-मय व्यक्तित्व और उनकी महान् दुम का महिमामंडन करने वाली पुस्तकों, सी. डी. और कैसेटों की बाढ़ आ गई । दुमों के सम्मान में आरती और भजन गाए जाने लगे।

' हम को दुम की शक्ति देना , दुम विजय करें ,

दूसरों की दुम से पहले , अपनी दुम की जय करें।'

एक समानांतर अर्थव्यवस्था अस्तित्व में आ गई जो पूरी तरह से दुमदारजी और उनकी महान दुम पर टिकी थी।

दुमदार जी की हिलती हुई महान दुम से प्रेरित हो कर देश के डॉक्टर और वैज्ञानिक गहन शोध और अनुसंधान में लग गए ताकि वे जान सकें कि मनुष्यों में दुमों को दोबारा कैसे उगाया जाए।

कई नए नारों का जन्म हो गया। जैसे गर्व से कहो कि हम दुमदार हैं। टी.वी। पर नए-नए तरह के विज्ञापन आने लगे। जैसे भला उसकी हिलती हुई दुम आपकी हिलती हुई दुम से तेज कैसे?अपनी दुम को तेजी से हिलाने के लिए आज ही लीजिए -- दुमदार चूरन।

पूरे राष्ट्र का आलम यह हो गया कि लोगों को जिनसे अपना काम निकालना होता, वे उन के पजामों में नाड़ों की तरह प्रवेश कर जाते। लोग अपना काम निकालने के लिए डोर-मैट बन जाते , दूसरों के पैरों की चप्पल बन जाते, जूते बन जाते। काम निकलते ही ऐसे दुमदार लोग दूसरों को ठेंगा दिखा देते। हर सभ्यता और संस्कृति किसी-न-किसी समय अपने उत्कर्ष पर होती है। इस समय दुमबाजी की सभ्यता अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई थी।

इस दुममय माहौल में दुमदार जी मुस्कुरा दें तो वसंत आ जाता था। दुमदार जी उदास होते थे तो पतझड़ आ जाता था। दुमदार जी खाँसते थे तो आँधी आ जाती थी। दुमदार जी छींकते थे तो भूचाल आ जाता था। दुमदार जी रोते थे तो नदियों में बाढ़ आ जाती थी। दुमदार जी हँसते थे तो मोर नाचने लगते थे। दुमदार जी नाराज होते थे तो बादल गरज उठते थे। दुमदार जी जिस ओर अपनी विश्व-प्रसिद्ध महान् दुम हिलाते हुए चल देते थे, वहीं रास्ता बन जाता था। वे जिस ओर से अपनी दुम वापस खींच लेते थे , वह जगह बंजर हो जाती थी।

इस दुम-मय माहौल में सरकार ने नोबेल पुरस्कार देने वाली समिति से सिफारिश की कि हर व्यक्ति के लिए पूँछ हिलाने को लोकप्रिय , सरल और सुगम बनाने में श्री दुमदार जी के महत्वपूर्ण योगदान को देखते हुए उन्हें नोबेल पुरस्कार प्रदान किया जाए। इससे स्वयं नोबेल पुरस्कार का सम्मान बढ़ता।

दुमदार जी से प्रेरणा लेकर अब दुम हिलाना लघु और कुटीर उद्योग बनता जा रहा था। देश के घर-घर में अब दुम-क्रान्ति आ रही थी। इंसानों द्वारा अपनी अदृश्य दुम को हिलाने के नए-नए तरीके ईजाद किए जा रहे थे।अब यह बात साबित हो चुकी थी कि दुम हिलाने में देशवासी पूरी दुनिया में सबसे आगे थे। यह देश के लिए गौरव की बात थी।

एक बार दुमदार जी को शहर के सबसे प्रतिष्ठित स्कूल ने अपने वार्षिक समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में बुलाया। वहाँ छात्र-छात्राएँ दुमदार जी की महान दुम को हसरत भरी निगाहों से देखते रहे। इस मौके पर दुमदार जी ने एक जोरदार भाषण दिया।

"प्यारे बच्चों, दुमबाजी की एक बेहद कठिन राह है। लेकिन यदि आप के भीतर चमचागिरी , चापलूसी और चाटुकारिता के बीज हैं तो आपको एक सफल मक्खनबाज बनने से कोई नहीं रोक सकता। आप मेरा उदाहरण लीजिए। मेरे पिता एक सीधे-सादे ईमानदार स्कूल-मास्टर थे। वे किसी के सामने पूँछ हिलाने को पाप समझते थे। मैं ऐसे बेकार खानदान में पैदा हुआ। किंतु मैंने विकट परिस्थितियों में भी हिम्मत नहीं हारी। मेरे भीतर दुमबाज बनने की ललक थी। मैं पूरी निष्ठा से पूँछ हिलाने के सम्मानित काम में लगा रहा। अपने पिता के बेकार मूल्यों के विरुद्ध जा कर मैंने दुमबाजी का मार्ग चुना, हालाँकि इस बात पर मेरे पिता मुझसे नाराज भी हुए। पर मैंने दुमबाजी जैसे महान् कार्य के लिए पिता के साथ अपने सम्बन्धों की परवाह भी नहीं की। मेरे पिता को आउटडेटेड आइडियलिज़्म के कीड़े ने काट रखा था। वे नहीं सुधर सकते थे। लिहाजा मैंने अपना मार्ग स्वयं बनाया। दिन-रात दुम हिला-हिला कर और जुगाड़ का सहारा ले-ले कर मैं आगे बढ़ा। आप भी मेरी तरह अवसरवादी बनिए। दुम हिलाइए और नाम कमाइये।'

बच्चे दुमदार जी की महान् दुम से अभिभूत थे। यहाँ तक सब ठीक चल रहा था कि अचानक अनर्थ हो गया। जैसे ही दुमदार जी अपना भाषण दे कर स्कूल के सभागार से बाहर निकले, यह दुर्घटना हो गई। पलक झपकते ही यह कांड हो गया। कुछ लोग इसके लिए दुमदार जी के विरोधियों को जिम्मेदार ठहराते हैं। उनका कहना है कि दुमदार जी के विरोधियों ने ही दसवीं कक्षा के कुछ छात्रों को रुपए-पैसे दे कर उनसे यह काम करवाया। हालाँकि दुमदार जी के विरोधी इस बात का खंडन करते हैं। वे कहते हैं कि उनका इस घटना से कुछ भी लेना-देना नहीं है। सच्चाई चाहे जो भी हो, जो अनर्थ होना था, हो गया।

हुआ यह कि जैसे ही दुमदार जी समारोह खत्म होने के बाद सभागार से बाहर निकले, दसवीं कक्षा के कुछ छात्रों ने उनकी दुम पकड़ कर उसे जोर से खींच लिया। और वह महान् विश्व-प्रसिद्ध दुम दुमदार जी के शरीर से निकल कर उन लड़कों के हाथों में आ गई। सब सन्न रह गए। हे राम! यह क्या हो गया ? और तब जा कर यह राज खुला कि इतने वर्षों से दुमदार जी एक विशेष प्रकार की रबड़ की नकली दुम लगाए घूम रहे थे और पूरे विश्व को ठग रहे थे। फिर क्या था! पूरे देश में कोहराम मच गया। सदमे की अवस्था में कई लोगों ने आत्म-दाह कर लिया। कई जगह आगजनी और तोड़-फोड़ हुई। पूरा देश हिल गया। यह तो होना ही था। जब भी कोई बड़ी दुम गिरती है, धरती हिलती है।

दुमदार जी के विरोधियों ने कहा 'हमें तो पहले ही पता था कि दुमदार जी के शरीर पर दुम निकल आने का यह पूरा प्रकरण एक बहुत बड़ा फ्रॉड है। इस पूरे शोर-शराबें में उस व्यक्ति की बात अनसुनी कर दी गई जिसने एक टी। वी। चौनल को दिए गए अपने इंटरव्यू में कहा था-- 'दुम तो सभी चाटुकारों, चापलूसों और चमचों की होती है, पर वह अवश्य रहती है। दिखाई नहीं देती। दुमदार जी के शरीर पर दुम का साक्षात निकलना तो उस अश्य दुम का प्रकटीकरण मात्र था।'

कहानी

द प्राईस ऑफ लव

सुभाष चन्द्र झा
(बि०प्र०से०) संयुक्त
आयुक्त–सह–सचिव क्षेत्रीय परिवाहन
प्राधिकार भागलपुर प्रमंडल, भागलपुर
मो०–9431208428

……..'किस 'अ…नु…भ…व' के विषय में तुम जानना चाहते हो ?'

'पुरूष की शय्या-संग का अनुभव ?पुरूष के स्वभाव के अनुकूल स्वयं को ढ़ालने का अनुभव ?पुरूष की चहेती होने का अनुभव ?रिक्त मन में आहत भावनाओं के सैलाब का अनुभव ? अपमान और प्रताड़ना तथा स्वार्थलोलुपता के लिज़लिज़ेपन का अनुभव ?बेमन से किये गये समझौते का अनुभव ?संवेदनाओं, अहसासों से घिरे होने का अनुभव ?..... किस-किस अनुभव के बारे में.... ?'

इतना ही कहा जा सकता है कि यहां कोई अनुभव बुरा नहीं है, कोई सुख बुरा नहीं है.....कोई स्वाद बुरा नहीं है.....दुःख बुरा है, दुःखी होना बुरा है।

सच तो यही है कि आज भी स्त्री-जीवन के भोग में कहां कोई परिवर्तन आया है जबकि घटनाओं के संदर्भ बदले, समय तथा जीवनमान बदला है।

'.....तो क्या स्त्री-पुरूष का हर आकर्षण महज़ यौनाकर्षण ही होता है ?देखने, छूने, पाने, भोगने की उत्सुकता और औपचारिकता मात्र ?' '

'आसमान में बादल उमड़ते-घुमड़ते ही हैं बरसने के लिए.....धरती होती ही है कभी अनावृष्टि तो कभी अतिवृष्टि का शिकार होने के लिए.....पेड़ में फल आख़िर किसलिए आते हैं ? जीवन बहुत सोच-समझ कर तो नहीं जिया जाता है न.....। घटनाओं-दुर्घटनाओं पर किसका वश होता है?'

'तो फ़िर प्रेम.....?'

'प्रे....म.... प्रेम है ही कहां.... प्रेम होता ही कहां है?'

सिर्फ़ प्रेम की जैविक प्यास होती है। दैहिक भूख होती है। तभी तो स्त्री-पुरूष संग-साथ की तलाश में एक-दूसरे की छाया के पीछे भाग रहे होते हैं। प्रेम की असमाप्त खोज-यात्रा है यह। हृदय और भावनाओं की जगह मन और बुद्धि का खेल जारी रहता है। यह ललक.....कि काश! कोई ऐसा अवसर मिल सकता तो.....कुछ अलग ढंग से....किन्तु हासिल रहती है मात्र यह टीस कि यह कतई मुमकिन नहीं।

'....परन्तु किसी को भटकते क्या देर लगती है ?'

रिश्तों के अपहरण के दौर में कोई कितना निरूपाय है.....सम्बन्ध होने पर भी जैसे असंबद्ध....'क्या यही संबंधों का सच नहीं है?'

'....क्या इस दुनिया में कोई खुश दिखाई देता है ?'

जो बच्चे की तरह आनंद लेना जानता है, सिर्फ़ वही खुश रह सकता है। इस संसार में केवल वही हस-मुस्करा सकता है जो कृष्ण की भूमिका में होता है, जो जीवन की आपाधापी में खुश रहना सीख लेता है। खुश रहने के लिए चाल और सोच को बदलना होता है।

"पता नहीं लोग दूसरों की ज़िन्दगी में इतनी दिलचस्पी क्यों लेते हैं जबकि खुद उनका जीवन इतना बेतरतीब होता है?'

यह ज़रूरी नहीं कि हमारे मन में किसी के लिए अनुराग है तब उसके मन में भी हमारे लिए अनुराग होगा ही। हर आदमी अपनी ही ज़िन्दगी जीता है।

"जब किसी से ग़हरा रिश्ता बन जाता है तब....?"

दूसरे चाहे जैसे रहे, उनके बिना जीवन चलता भी तो नहीं है। आदमी अकेले रह ही नहीं सकता है। अगर अकेले रहता भी है तो अकेले होने का भारी अफ़सोस लिए।

कौन लोग हैं जो अपने-अपने रिश्तों से, दूसरे के व्यवहारों से दुःखी नहीं हो रहे होंगे। कभी-न-कभी। कहीं-न-कहीं। रिश्ते-नातों की इस पीड़ा को हर कोई महसूस करता ही होगा। रिश्तों के मामले में ज़्यादातर लोग अभागे ही होते होंगे।

'परिन्दों के लिए मगर क्या पूरी धरती ही आशियाना नहीं है ?'

संसार बड़ा निर्मम होता है। उसे किसी को सहेजते और कूड़ेदान में फ़ेंकते देर नहीं लगती। किन्तु-परन्तु मायने नहीं रखते। कितने हमें याद हैं,

कितनों को हम भूल गये, कितनों को हम आदर और श्रद्धा से याद करते है, कितनों को ही बेइंतिहा घृणा से। संसार का चक्र आगे भी ऐसे ही चलता रहेगा। अनेक उतार-चढ़ाव के साथ बीतता ही चला जाता है जीवन का सफर। किसी के लिए कुछ रूकता नहीं, कोई ठहरता नहीं। जानेवाले का ग़म तो होता है, उम्रभर मगर कौन किसको रोता है ?

ऐसा भी होता है कि जीवन के सफ़र में कभी-कभी किसी व्यक्ति, उसके चरित्र, उसके इतिहास से हम न चाहते हुए भी अनज़ाने ही टकरा जाते हैं और फ़िर हमारा हर पल उससे प्रभावित होने लगता है। जैसे हम उसी के सांचे में जीने लगते हैं। उस व्यक्ति का व्यक्तित्व हमारी संपूर्ण विचारशक्ति पर अथाह आकाश की तरह अपनी अमिट छाप छोड़ जाता है। फ़िर उसी के विचारों, संस्कारों में हम पूर्णतया भीग जाते हैं, उस व्यक्तित्व के

सम्मोहन से पूर्णतया जकड़ जाते हैं। भूख ऐसे में नैतिकता से बड़ी हो जाती है।

इसलिए ज़रूरी है अपनी जड़ों को लेकर प्रतिबद्धता!

वैश्वीकरण, आधुनिकता, सहशिक्षा प्रणाली, नित नये तकनीकी संसाधनों से जुड़ता तेज़ी से बदलता जाता सामाजिक वातावरण, नेटवर्क सोसाईटी और डिज़िटल कल्चर इन सभी के आज की जीवनशैली पर बेतहाशा होते अनुकूल-प्रतिकूल परिणामों के बीच कितना मुश्किल होता है स्वयं को अविचलित बनाए रखना। सुंदरता, शालीनता, शिक्षा-किसी स्त्री में इन तीनों का होना आज बेहद दुर्लभ बात मानी जाएगी। वैश्वीकरण के युग में भौतिकतावाद के संस्कारों से अस्पर्शिता नारी....! पुरूष कितनी ही पढ़ी-लिखी स्त्री से शादी कर ले, वह अपनी पत्नी को एक आदर्श पत्नी ही देखना पसंद करता है। पत्नी आधुनिक हो, पर उसका रहन-सहन, आचरण, स्वभाव परंपरा का पालन करती आदर्श भारतीय स्त्री के सांचे में ढ़ला होना चाहिए।

'.....जबकि सुख थोड़े भी मिल रहे हों तो उसका अनंद ले लेना चाहिए। हम अक़्सर ज़्यादा सुख की तलाश में छोटी-छोटी खुशियों को छोड़ जाते हैं. ....आनंद थोड़े में ही आता है.....कम में खुश रहना और जो न मिले, उसके लिए मलाल न करना यही तो जीवन जीने का राज है। इस संसार में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे अनहोनी कहा जा सके। जो हो रहा है या भविष्य में होनेवाला है-उसे रोका नहीं जा सकता। हां, पराई वस्तुओं की चमक से हमें अंधा नहीं होना है। फ़िर तो जो पास है वही गर्व करने योग्य है। डूबने के डर से तैरना सीखा नहीं जा सकता।'

....मगर हमारी चाह हमें कभी भी वर्तमान में जीने नहीं देती, इसलिए कभी पूरी नहीं होती। हम ज़ल्दी-ज़ल्दी में बहुत कुछ पाना चाहते है और कुछ भी ज़ल्दी प्राप्त नहीं कर पाते। नतीज़ा मिलने में वक़्त लगता है....यह बात भूल जाते हैं।

चोट वहीं लगती है, जहां बंधन हैं। जिस चिप्त पर बंधन नहीं है उसे कोई भी चोट नहीं लगती। हमें कोई बांधे हुए नहीं है, हमी बंधे हुए है।

'फ़िर ऐसा क्यों लगता है कि ग़लती हो रही है ?'

ग़लती कभी हुई ही नहीं, ग़लती हो ही नहीं सकती। ग़लती होने का उपाय ही नहीं है। पाप कभी हुआ नहीं, पाप हो ही नहीं सकता। पाप होने का उपाय नहीं है और न पुण्य हो सकता है। और न पुण्य कभी किया गया है। शरीर के तल पर न कुछ बुरा है, न कुछ भला है। न कोई, न कोई पाप है। और कोई कुछ करता नहीं होता है।

कोई भी कहानी कहानी नहीं होती। हो ही नहीं सकती। अकहानी ही ज़िन्दगी की वास्तविकता है।

'.....कहां से शुरू करूँ इस कहानी को..... ?'

'वही कहानी है जो किसी मध्यवर्गीय स्त्री की कहानी होती है। वही तमन्नाएं, आरजुएं, इच्छाएं और उनके अधूरे रह जाने की वही कहानी है।

'लव एट फ़र्स्ट साइट' में व्यतीत समय फ़िर कभी नहीं लौटते! उन दिनों को भरपूर जी ही लेना चाहिए। जिस गोल्डेन टाईम की बात कही जाती है, वो यही दिन तो होते हैं। इसके बाद तो ज़िन्दगी दौड़ाने लगती है एक ऐसे मरूस्थल में, जिसका कोई ओर-छोर ही नही होता। बस, दौड़ते ही जाना होता है। सब डिज़िटल हो जायेगा, तो बचेगा ही क्या जीवन में फ़िर?'

'....पता कैसे चलता है कि हम प्रेम के सबसे ग़हरे पलों में हैं अब....?'

-'जब दुनिया में कोई भी बुरा नहीं लगे। यहां तक कि बेज़ान चीज़ों से भी यार होने लगे। बिना चीनी की कड़वी कॉफ़ी जब मीठी लगने लगे। जब ढ़लती शाम में सूरज को अंतिम सिरे तक डूबते हुए देखना अच्छा लगने लगे, तो समझो कि प्रेम के गुलमोहर पर फ़्लॉवरिंग का पीक़ समय चल रहा है। .....फ़िर भी जीवन में कुछ चीज़ें ढ़की ही रह जायें, तो अच्छा है! ... .कभी-कभी समय और उम्र हमको थोड़ा इन्सिक्योर कर देते हैं। अच्छे दिनों के बारे में हर कोई यही सोचता है कि क़ाश! ये दिन कभी ख़त्म ही नहीं हों !'

'.....क्या हुआ?'

'कुछ नहीं होता'- ज़रा-से बादल हैं....छंट जायेंगें।

....और मैं तो हूँ ही तुम्हारे साथ न। मेरी चिंता मत करो। मुझे कुछ नही होगा।

'ऐसा लगता है जैसे कोई बहुत खूबसूरत कहानी बीच में ही अधूरी छूट गई हो, बिना किसी अन्त के....।'

'सारी कहानियाँ अपना अंत लेकर नहीं आती हैं, कुछ कहानियाँ अधूरी छूट जाने के लिए ही होती हैं। जिनका कोई अन्त नहीं होता है। कभी नहीं... वे अनन्त तक, अनन्त में भटकती रहती हैं, किसी अंत की तलाश में।'

'....यह तो तेरा अपना फैसला था.....।'

'हां, फ़ैसला तो मेरा ही था और मुझे उसपर कोई मलाल भी नहीं। जो किया ठीक किया। बस यूं ही ज़रा....।'

-'ज़रा सोचो, क्या हम चाहकर भी इस संबंध को वह रूप दे सकेंगे -जैसे हम चाहते हैं? यह संबंध स्वयं में अनेकानेक विचित्रताएँ समेटे हुए है, और अपने लिए भी अनुभवातीत है। अब समय आ गया है कि हम साक्षी-चेता दर्शक की तरह ही सारी घटनाओं को घटते हुए देखते रहें और उसमें अपनी किसी भी प्रकार की भूमिका की आशा न करें।'

'संबंध कभी मीठी आवाज़ और सुन्दर चेहरे से नही टिकते! वे टिकते हैं सुन्दर हृदय और कभी न टूटने वाले विश्वास से। सांसें और उम्र तो सब को हिसाब से मिली हुई हैं। जिसका जितना जीवन है, बस उसे ठीक से जीना है।'

उस समय प्रिया का रूप-सौन्दर्य कुछ इस प्रकार कौंध रहा था-

'जैसे पुरइन के बड़े-बड़े पत्तों में जल की बूंदें थरथरा रही थीं। जैसे धूप में तालाब का पानी चमक रहा था। जैसे हवा बहती जा रही थी और समय थम गया था.....। जैसे अलग मिट्टी और विशेश मुहूर्त्त में गढ़ी गई हो, जो हमेशा इतनी अनूठी, अलग और दिव्य लगती है, दिव्य-द्रव्यों से सृजी। ऊपर से नीचे तक नज़ाकत, नफासत और प्रेम से सराबोर। रोम-रोम आह्लादित जैसे असमय ही वसंत ऋतु का आगमन हो गया है। जैसे नई

संभावना लेकर उगती हुई चांदनी। जैसे कोई खुशबू जो अभी हवा में उड़ कर बिख़र जायेगी। जैसे हमसे जो टकरायेगा वो हमारा ही होकर रह जायेगा। जैसे कोई बरसाती नदी पत्थरों से फूट कर बह निकले।'

'लत कोई भी हो, वह उम्र का बंधन कहां और कब स्वीकार करती है..!'

बस, अंतर की खाई मात्र को पाटने-पटाने भर की बात ही होती है! चाहे खाई पहली बार पाटी-पटायी जा रही हो या पहले भी बार-बार पटी-पटायी जा चुकी हो! कहां कोई फ़र्क पड़ता है! अंधेरे और उज़ाले अपने-अपने आदिम स्वरूप में कभी-न-कभी आ ही तो जाते हैं। अपने-अपने प्राकृतिक स्वभाव की कब तक अनदेखी और अवहेलना कर सकते हैं! हर चीज़ का एक समय होता है और वह समय अपने स्वभाव के अनुसार स्वतः किसी परिस्थितिविशेश में प्रकट हो ही तो जाता है, रोके भी नहीं रूक पाता। कभी अंधेरा उज़ाले को पस्त करता है, तो कभी उज़ाला अंधेरे को मात करता है और यह सिलसिला कभी तो खुले आम या अक़्सर चोरी छिपे चोर रास्ते से ज़ारी ही रहता है!

जलडमरूमध्य स्मृतिविहीन समय में वक़्त तो अपनी रफ़्तार से सरकता ही रहता है.....कोई देखे या न देखे, अनुभव करे या न करे।

वर्त्तमान समय में पहले की तरह नैतिकता और आदर्श जैसी कोई चीज़ रही भी तो नहीं! हर कोई अब अपने हिसाब से जीना चाहता है, जी लेना चाहता है और केवल अपने लिए अच्छे परिणाम चाहता है। दूसरे से क्या लेना-देना और क्यों, किसलिए?

मौसमों का काम है बीतना, सो बीतते रहते हैं। एक मौसम आता है, चला जाता है और दूसरा आ जाता है।.....

....आख़िर बरसात भी कब तक रहती...?उसे भी तो बीतना ही था, सो बीत .....परंतु ऐसा तो कभी नहीं होता कि सारे विकल्प ही समाप्त हो जाएं। ज़िन्दगी हमेशा कुछ विकल्पों को शेष रखकर ही चीज़ों को समेटती है.....अत्यंत धीरे-धीरे। इश्क़-मुश्क़ कहां छिपते हैं!

.....गंध का सबसे बड़ा दुर्गुण होता है कि उसे छिपाया नहीं जा सकता। खुशबू सुगबुगाहट पैदा करती है।

बरसात के मौसम में कौन किस खेत का चक्कर लग रहा है, चिड़िया किस खेत को चुग रही है, किस खेत की कृषि-बागवानी हो रही है-सब पता चल ही जाता है!

यद्यपि पश्चिम के खुले यौन-उन्मुक्त परिवेश में दैहिक संबंधों को लेकर कोई हाय-तौबा नहीं मचती, कोई काना-फूसी नहीं होती-एक प्रकार की लापरवाही और उदासीनता होती है। इन सवालों को बहुत बड़ा सवाल नहीं माना जाता, कैजुअली ही लिया और समझा जाता है। किसे फ़ुर्सत है दूसरे के क्रिया-कलापों में ताक-झांक करने की?स्वयं की संलिप्तता से ही उसे वक़्त कहां मिलता है? ऐसे में कौन क्या देखे, किसकी परवाह करे, क्यों करे? कौमार्य और यौन-शुचिता का प्रश्न तक नहीं उठता!

.....सब-के-सब कामुक, स्वार्थी, सुविधाभोगी, मतलबी हो गए हैं। रिश्ते अब बचे ही नहीं-सब कैरियर है और कैरियर के लिए जैसे सब कुछ जायज़ मान लिया गया है। .....हां, 'कुछ भी'.....।

हर मुंह में खून लग गया है.....! सब तन की प्यास की भट्ठी में उबल रहे हैं, उफ़न रहे हैं, खौल रहे हैं, पिघल रहे हैं, सुलग रहे हैं, स्वाहा हो रहे हैं.....!

इस सच से इन्कार ही नहीं किया जा सकता कि हम सब जैसे जूठन हैं..... । जूठ खा रहे हैं, जूठ पी रहे हैं, जूठा ही जी रहे हैं, जूठ पर जीने को विवश हैं.....जूठ का शिकार कर रहे हैं और जूठ का ही शिकार होने को जैसे अभिशप्त होते जा रहे हैं।

'तो फ़िर....पाप और पुण्य...?'

समय के साथ इनकी परिभाषायें बदल जाती हैं, कभी भूगोल के साथ, कभी परिस्थिति के साथ, कभी ज़बरदस्ती के साथ। एक पक्ष का पाप भी दूसरे पक्ष के लिए पुण्य नहीं बन जाता है क्या?और एक पक्ष का पुण्य दूसरे के लिए पाप!.....जो कल्याण के लिए वह पुण्य, पतन के लिए पाप! पाप से मुक्ति का तरीका है-''तुम अपने भीतर एक नितांत अलग, स्वस्थ चेतना का विकास करो। तब तुम पाओगे कि अतीत में तुम्हारे किए गए पाप अर्थहीन हो गए हैं। जैसे उन्हें करने में तुम्हारी कोई भूमिका थी ही नहीं। वे सब उस समय नियति द्वारा संचालित थे। तुम्हारी देह तो मात्र निमित्त थी।'' परन्तु.....काश! ऐसा होता भी!

....और इतना सहज और आसान है क्या अपने कर्मो को अनदेखा कर पाना.....! सुकर्म और कुकर्म दोनों के ही अपने परिणाम होते हैं और इन्हें तो भोगना ही पड़ता है, कोई दलील काम नहीं आती। यह ध्रुव सत्य है और सदा रहेगा।

....पश्चिम में कोई यौन-वर्जना नहीं है, कोई टैबू नहीं हैं। वहां कोई क्रिया छुपकर नहीं चलती। जीवन-क्रिया हो या फ़िर काम-क्रिया। सब खुलेआम होता है। सब स्वीकार्य। किसी से किसी को न कोई मतलब, न आपत्ति और दूर तक न ही कोई आसक्ति, राग। वहां देह के प्रश्नों को लेकर कोई बवाल नहीं होता, कोई सवाल नहीं होता। वहां देह स्त्री-पुरूष की अपनी निजी सम्पत्ति होती है और उनका इस्तेमाल वे अपनी खुशियों के हिसाब से कर लेते हैं, कोई रोकटोक नहीं है ऐसा करने में। सेक्स का प्रेम से कोई वास्ता नहीं, किसी से कोई भावनात्मक लगाव नहीं, सेंटिमेंटल आसक्ति नहीं। जैसे देह कोई यांत्रिक मशीन हो!.....इसीलिए तो वहां कोई वैवाहिक संबंध देर तक टिक नहीं पाता। कोई कमिटमेंट नहीं। आज यहां, कल वहां। आज पहला, कल कोई दूसरा, परसों कोई और! और ....और....और इसका कोई अंत ही नहीं। बस, चलता रहता है ऐसा ही।

.....संबंध देह-मात्र तक ही सीमित! उसके आगे की कोई बात नहीं। इसलिए किसी को किसी से कोई शिकवा-शिकायत नहीं। किसी के मन में अफ़सोस, पश्चाताप, ग्लानि, द्वन्द्व, द्विधा नहीं। सब कुछ स्पष्ट। कोई प्रतिबद्धता, ईमानदारी, वफ़ादारी नहीं। और इसके लिए किसी के मन में कोई पाप-बोध नहीं, अपराध-भाव नहीं। सारी बातें बिल्कुल सहज, स्वाभाविक। बेहद मामूली-सी बात! अभी किसी के साथ, दूसरे ही क्षण गई। बरसात बहुत-सी बातों पर आड़ कर देती

है, पानी की आड़। इस समय खेतों पर व्यस्तताएं बढ़ी होती हैं। सभी अपने-अपने खेतों पर व्यस्त होते हैं-निकाई-गुड़ाई और फ़सल बोने के लिए। दूसरे की खेत की ओर भला किसका ध्यान रहता है?बरसात में कुछ ठंड पड़ती है तो ठंड का मौसम आते ही वह ठंड भी जून में बदल जाता है। और ऐसा ही होता रहता है.....। किसी और के साथ और बस यहीं ख़त्म हो गई बात। वहां देह के प्रश्नों को लेकर कोई बहुत ज़्यादा वर्जनाएं, नैतिकता के सवाल खड़े ही नहीं होते। सिर नहीं फोड़ा जाता।

...'परन्तु हमारे यहां ऐसा खुलापन नहीं है। इसलिए चोर रास्ते हमेशा से बने होते हैं। जहां चाह होती है, वहीं राह भी मिल जाती है। अब राह तो होती है, लेकिन कैसी होती है, उसकी कोई गारंटी नहीं होती है। राह उबड़-खाबड़ भी हो सकती है। गड्ढ़ों भरी हो सकती है। कांटोंभरी हो सकती है। चिकनी फिसलनभरी हो सकती है। सपाट भी हो सकती है। फूलों से भरी भी हो सकती है और कैक्टस बिछी भी। अब राह चुननेवाले पर निर्भर करता है कि वह कैसी राह चुनता है? लेकिन चोर-राह का एक सत्य यह है कि उस राह में ख़तरे-ही-ख़तरे हैं, कभी भी सुरक्षित और निरापद नहीं होती ऐसी राह। इस राह पर चलने का मतलब है-पतन, गड्ढ़े में गिरना। जहां से कभी निकलना संभव ही नहीं। अपाहिज हो जाना ही इस राह का अंज़ाम है।

आख़िर चोरी तो चोरी ही है। वस्तु की चोरी हो, ज़िस्म की चोरी हो, मन की चोरी हो, तन की चोरी हो-एक ही बात हुई। है तो व्यभिचार ही न। तन के व्यभिचार से भी ज़्यादा कभी-कभी मन का व्यभिचार ख़तरनाक हो जाता है।

.....पुरूष के संग रह चुकी, पुरूष का संसर्ग पा चुकी कोई भी स्त्री पहले की तरह तन-मन-भावना से वैसी ही अछूती और शुद्ध कुंआरी तो रह नहीं जाती है न! पुरूष के संग, पुरूष की देह के साथ होकर स्त्री शायद अधिक हिंसक हो जाती है। देह और अफ़ीम-जब तक न चखो, कोई दिक्कत नहीं। लेकिन एक बार चख ली, तो लत लगेगी तय है।

लत उसे लग चुकी थी। थी भी भरी-पूरी स्त्री! भादो की उमड़ती बरसाती नदी जैसी। जितना भीगो, उतना जलो। सावन-भादो की बरसाती नदी इतनी प्यासी होती है कि उसकी प्यास बुझ ही नहीं पाती। जितनी पी ले, उतनी ही प्यासी! सारी लक्षमण-रेखाओं को पार कर तटबंधों को बहाकर भी ऐसी नदी की प्यास बुझ नहीं पाती! कितनी भी बारिश हो जाये, ऐसी नदी की पाट भर पाने में असमर्थ साबित होती है। उसके पाटों के विस्तृत होते चले जाने की कोई सीमा ही नहीं हो पाती। सोख लेती है अपनी कोख़ में बूंद-बूंद सारा जल। फ़िर भी प्यास से तड़पती! दहा-बहा ले जाती है सब कुछ! पूरी तरह अराजक, उच्छृंखल हो जाती है ऐसी नदी। किसके संभाले संभलती है?किसके रोके रूक पाती है?किसके बांधे बंध पाती है?

....उस सनसनी को क़ाबू में रखना?कोई कितना और कब तक एक रह सकता है भीतर और बाहर से? ज़न्नत के भीतर काम में लिप्त आक्रामक मुद्राओंवाली अप्सराओं को देख कर क्या कोई अपने वश में होता है?

...मौन कामुक निमंत्रण देती हुई जैसे कह रही हो-'यह देह की गंध है। डूबकर तो देख इस देह के विस्तृत ग़हरे उफ़नते समन्दर में....?'

.....देह के समन्दरों में डूबते-उतराते....शेश दुनिया से बेख़बर....खुद से भी बेख़बर रात भर तैरते समन्दर में.....कामक्रीड़ारत पुरूश और अर्द्धनग्न स्त्रियों की कहानी पुस्तकों में भले ही पढ़ी जाती हों....वह तो पानी में भी नहीं उतर पा रहा था!

'.....शांत हो जाओ। मैं तुम्हें उबार लूंगी।'

.....मर्यादा की लक्षमण-रेखा लांघी जा चुकी थी! भादो के बादल थे। बरस भी रहे थे, गरज़ भी रहे थे। शायद लक्षमण-रेखाएं लांघने के लिए ही खींची जाती हैं!

....रात अधिक काली होकर और ग़हराती रही....। उसके पोर-पोर में पानी समा गया....। फनफना कर फुफकारता, गरज़ता और बरसता रहा बादल इस जगह, उस जगह, सब जगह। बिजली चमकती रही। बूंदें बरसती रहीं। उस रात जमकर खूब बरसात हुई, मूसलाधार घटाटोप अंधकार को चीरकर। बरसाती नदी किनारों को तोड़कर जलप्लावित होकर बहती रही। नदी पहली बार इतने भयंकर रूप में उमड़ी....। चारों तरफ़ पानी-ही-पानी हो गया। नदी अपने ही पानी में छप-छप करती, ऊब-चुभ होती रही। तेज़-तेज़ हांफ़ती उठती-गिरती बेक़ाबू सांसों के बीच...।

.....उसके बाद की बरसात अब उसके लिए वैसी नहीं रही.....अब आगे की बरसात में ठंडक पड़ती जा रही थी। जिस दिन तेज़ बरसात होती, खुश हो जाती नदी। प्यासे को पानी जो मिल रहा था।

....भीग रहा था.....पानी बारिश में ! लस्त-पस्त-श्लथ...निढ़ाल होकर संज्ञाहीन....। भीग रही थी हवा झमाझम अस्तव्यस्त खोली केश-राशि! निर्वसन नदी को बादल अपनी ओट में ले के चूम रहा था बांह कसे। चोट सह रही थी पंखुड़ियां बूंदों की। गंध बेचारी भीग रही थी तेज़ बारिश में सुधबुध बिसरा कर। गिर रहा था सरक के पल्ला 'दूधिया स्वर्णकलशों' से। बोल रही थी काम की भाशा देह निबोली भीगी-भीगी।.....किसी अंधकूप में डूबती हुई...।

.....फ़िर मौसम बदल गया! शरद ऋतु की रात में पूरा-का-पूरा चांद अंदर खिल गया। चांदनी बार-बार जूठी होती रही.....। बार-बार चांद निकला, चांदनी जूठी होती रही। जाते हुए पलों को वह अधिक-से-अधिक जी लेना चाहती थी, जी रही थी। अमृत छका माहिर खिलाड़ी चांद उसी प्रकार चांदनी के ऊपर अमृत बरसा रहा था....।

....अब न कहीं कविता थी इसमें....न कहीं प्रेम। वैसे भी कविता स्त्रीलिंग, प्रेम पुलिंग। घबराई सकुचाई सहमी-सी कविता....फ़िर भी तलाश रही थी प्रेम को। जाने कैसी अंतहीन तलाश थी यह...!

जहां स्त्री लांघ रही होती है एक अलंघ्य प्यास ! क्या उसे पता नहीं, बस कुछ दूर चलकर ही छूट जाना है साथ। तो क्या स्त्री सचमुच रात है?या रात में स्वप्न है वह ?एक नीला विस्तार, अज्ञात है जिसका ज़्यादातर हिस्सा ?

बारिश में भीगता पानी इन सवालों से मुक्त लग रहा था।

बेझिझक बोली-'मुझे बाज की तरह आंसमान से प्रेम है, चाहे वह नीला हो, बादलों से भरा सलेटी हो, ग़हरा काला हो या फ़िर सितारों से भरा। कोई फ़र्क नहीं पड़ने वाला! प्रिया जैसी बिंदास स्त्री के लिए बेहद मामूली बात है।'

'हां, ऐसी स्त्रियों के लिए ये बातें मामूली ही होती हैं। ये उस काम को भी काम ही समझती हैं। आंखों में आंख डालकर कहना पसंद करती हैं-हां, तुम मुझे पसंद हो। आंखें झुकाकर नहीं । फ़्लर्ट होती हैं, काम चल ही रहा है, तो फ़िर शादी क्यों करें।'

.....फ़िर बातचीत आगे बढ़ती रही। आजकल के प्यार पर, ट्रायल एण्ड एरर पर, लव मैरिज़ पर, अरैन्ज्ड मैरिज़ पर।

'तुम पुरूष वर्ग आख़िर स्त्रियों को समझते क्या हो?'

'...स्त्रियां प्रेम नहीं करतीं, पुरूषों के कैरियर और भविष्य को देखकर तय करती हैं, साथ रहना! पलक झुकाकर प्यारे शब्द बोलने की जगह आंख में आंख डालकर कहना पसंद करती हैं कि हां ! आई लव यू-नो वन वान्टस टू वी लेफ़्ट अलोन, नो वन वान्टस टू वी ऑन देयर ओन.।'

'....और पुरूष ही कौन-से प्रेम करते हैं?प्यार सुन्दर और बोल्ड स्त्री से? शादी या तो नौकरीवाली से, या मोटे दहेज़वाली से। आजकल इश्क़-विश्क़ कौन कर रहा है? 'तुम प्रैक्टिकल हो तो हम डबल प्रैक्टिकल-यही व्यवहार है।'

'.....प्यार, व्यावहारिक पुरूष, बेवफ़ा स्त्रियां ! शादी से भागते पुरूश, प्रेम में सब छोड़ती स्त्रियां ! एक हद के बाद इंसान को सेल्फिश हो ही जाना चाहिए।'

...'प्रेम क्या देह से होता है.....मन कुछ नहीं होता?'

आज की स्त्रियां अपनी यौनिक इच्छाओं के बारे में ज़्यादा खुल रही हैं। हर औरत अलग इन्सान है और दूसरी औरत से एकदम फ़र्क़ हो सकती है। अपनी चौख़टों को कहां और कितना खोलना तथा बंद करना है, यह उनका व्यक्तिगत मामला होता है। उनकी देह पर मात्र उनका अधिकार है। अपनी देह को जैसा चाहे इस्तेमाल करे। किन्तु इसके बावजूद....देह भर ही नहीं होती है स्त्री, न ही उनकी जननेन्द्रिय पुरूष की कामुक उत्तेजनाओं के स्खलित होने का उगलदान। उनकी अपनी आत्मा होती है। सिर्फ़ मर्द ही नहीं जानते सेक्सुअल खेल खेलना, स्त्री क्या-क्या जानती है पुरूष जान भी नहीं सकता । उधड़े हुए स्वेटर को खींचकर पूरा उधेड़ देने में भी ज़रूरत पड़ने पर कोई कोताही नहीं बरतती। नारी कूदने पर आमादा हो जाए तो क्या दरिया, क्या पेड़....।

उस समय वह पूरी तरह से एक स्त्री होती है। संबंधों के सभी दायरों से परे, मर्यादा के सभी बंधनों से मुक्त, समाज की सभी परिभाशाओं से अंजान । मात्र एक आदिम पवित्र स्त्री। पूरी तरह वर्जिन। फ़िर भी जब कोई प्रेम की ग़हरी नज़रों से उसे देखता है तो सांस लेने में भी कठिनाई महसूस करने लगती है। आईने में उसे देखना पड़ता है कि कहीं निशान तो नहीं उभर आए।

मगर....एक चुम्बन का अर्थ प्रेम नहीं होता। मन की भांति देह की भी अपनी स्मृतियां होती हैं। परन्तु आज जो है सा सेक्स है, सेक्स है, सेक्स है। मगर प्यार पीरियड की तरह है। इसका होना रोक नहीं सकते। इनका न होना कुछ असामान्य सा है और इनके न होने से कुछ इम्बैलेंस हो जाता है। बस हो जाना और हो कर निकल जाना, बस.....। असल में कोई किसी का इस्तेमाल नहीं करता। सच है कि जीवन के सूक्ष्म अनुभव व अनुभूतियों के कोमल अभिव्यक्ति के लिए नारी का होना एक शाश्वत सत्य है। कला की कोई भी विधा नारी के बिना न तो प्रारंभ हो सकती है, न ही पूर्णता को प्राप्त कर सकती है। हर युग और हर भाशा के साहित्य में साहित्य का केन्द्र बिन्दु वे ही रही हैं। .....परन्तु कुछ पाने की साध में बेतहाशा दौड़ती स्त्रियां नहीं जानतीं, वे क्या चाहती है। सारी इच्छाओं को पूरा तो नहीं किया जा सकता।

-प्रेम की गर्म सांसें प्रिया के गले और गर्दन को छू रही थीं। प्रिया को फुरफुरी-सी हो रही थी। यह आज के समय की प्रोफ़ेशनल सोच भी है। जिसकी आंखों में मुक्ति के जितने स्वप्न, मन पर बेड़ियां भी उतनी ही पड़ी हुईं।

स्त्री कभी सुन्दर नहीं होती, पुरूश का हृदय सुन्दर होता है। जबभीतर-बाहर एक हो जाता है, तो बंद आंखों से भी वही दिखाई देता है, जो खुली आंखों से दिखता है। जब बहुत ज़्यादा उत्सुकता बढ़ जाती है, तो ज़िन्दगी खुद ही एक दिन समझाने की व्यवस्था कर देती है।'

'..... और प्रेम सचमुच एक माया ही है। हर पुरूष इस माया से निकलकर अमृत की तलाश में जाना चाहता है। हमारा जीवन इसी का खेल है। प्रेम चाहिए या अमृत। इस खेल की दिलचस्प बात यह है कि जब आप प्रेम को छोड़कर अमृत की तलाश में निकल जाते हैं, तो प्रेम अधूरा रह जाता है, माया अधूरी रह जाती है, लेकिन यह अधूरापन ही प्रेम को अमर कर देता है। अधूरा प्रेम कभी नहीं मरता, बल्कि जो अधूरा है, वही अमर है, जो पूरा हुआ वो मर जाता है। तो होता यह है कि अमृत की तलाश में निकलते समय हम अपने पीछे कुछ चीज़ों को अमर कर जाते हैं।' प्रिया बोली-'मैंने प्रेम को बीतते देखा, रीतते देखा, अपने-आप को ठगा हुआ-सा महसूस करते हुए। मैं अपने हिस्से के प्रेम को अपने पास बांध लेना चाहती थी। इस तरह कि वो कहीं भी रहे, किसी का भी रहे, लेकिन मेरे पास रहे।'

'.....लेकिन प्रेम चाहता था कि हम बिना कोई सीन क्रिएट किये ही अलग हो जायें। वही नैतिकता, जिसको आजकल मूर्खता कहा जाता है....! लेकिन इंसान हमेशा अतिरिक्त का सुख भोगना चाहता है, अतिरिक्त जो अर्जित से हटकर प्राप्त हो रहा हो।

....तब बहुत ख़ामोशी से मैंने सीन नही क्रिएट करने की 'क़ीमत' मांगी ....उसकी ज़िन्दगी की एक शाम और एक रात अपने लिए! रात.....हर तरफ़, बस रात! अब मैं सबकुछ चाहती थी....सबकुछ....प्रेम के साथ वह शाम और रात बिताकर जीवनभर के लिए कुछ बटोरना चाहती थी। प्रेम को मैंने कोई च्वाईस ही नहीं दी थी। बस, चाहिए, तो हर क़ीमत पर, हर हाल

में चाहिए ही! जो मुझे चाहिए वह सीन नहीं क्रिएट करने की क़ीमत है। वो क़ीमत कहां देना है,कैसे देना है-वह भी मुझे नहीं मालूम, वह प्रेम का सिर-दर्द था। प्रेम की मज़बूरी है मुझे मेरी क़ीमत देना और उसकी व्यवस्था उसने ही की थी।'

.....और उस शाम सूरज दूर क्षितिज में कहीं डूबता रहा.....ग़हराती रात के अंधेरे में मैं बेख़ौफ उतरती रही, डूबती रही, भटकती रही.....जाने क्या तलाश करते हुए, या शायद बिना किसी तलाश में यूं ही बस.....हर यात्रा किसी उद्देश्य से ही की जाये, ऐसा ज़रूरी तो नहीं! कुछ यात्राएं जीवन में निरूउद्देश्य भी करनी चाहिए। तो बस, वही किया मैंने भी। बिकाज़ आई नो आवर लव विल नेवर बी द सेम.....।'

'....एक रात में कई यात्राएं कीं हमने, हम दोनों ने। हर यात्रा के ख़त्म होते ही मैंने प्रेम के पसीने की महक में सबसे ज़्यादा परेशानी महसूस की। एक पतंग की तरह तूफ़ान में नाचती हुई बार-बार अमृत की बूंदों से निहाल हुई। मन गर्व और जीत से भर उठा काव्यमय गरिमा के साथ। जैसे एक पूरा पदबन्द ही धरती की देह पर लहरा गया। रात बार-बार चन्द्रमा को चूमने के लिए अकुलाती रही। इस क़ीमती रात के गीले और सघन अंधेरे में चुपचाप भागती स्मृतियां बोलती जा रही थीं कि यह समय कभी वापस नहीं आयेगा।'

सच, प्रेम के अपने भीतर जो ज़िन्दगी धड़कती है, वह बिल्कुल अलग होती है, किसी भी शब्द और अहसास से। अनन्ततः एक स्त्री को चाहिए ही क्या, प्रेम ही न और यह डोर ही छूट जाये तो.....! कई परतें होती हैं स्त्री में जो धीरे-धीरे खुलती है और समय और संयम की ज़रूरत होती है पुरूष के लिए। प्रेम पर मुग्ध होते पुरूष आख़िर धीरे-धीरे क़िनारा कसने ही लगते हैं....फ़िर क्यों न अपने हिस्से के सुख का जी भर कर उपयोग-उपभोग कर ही लिया जाय।

परिस्थितियां कभी भी हमारे लिए एक समान नहीं रहतीं। और परिस्थितियां कभी भी हमारे लिए समस्या नहीं बनतीं। समस्या तो तब होती है, जब हमें परिस्थियों से निबटना नहीं आता। ....अब तो पूरी आज़ादी के साथ अपने प्राप्य को पाकर ज़िन्दगी भर अकेले रहने का फैसला किया है और अपने फैसले पर आज भी कायम हूँ मैं ।

सच है कि कोई भी प्रेम हमेशा एक-सा नहीं होता, वह एक-सा हो भी नहीं सकता!

प्रेम और सपनों के द्वन्द्व में जीत सपनों की ही होती है, प्रेम हमेशा से हारता ही आ रहा है।

बोलती ही रही-'मेरे अन्दर वह रात, बहुत अधूरापन छोड़ गई थी। अगर वह रात न होती, तो शायद प्रेम के प्रति मेरे मन में कुछ नहीं बचता, समय के साथ प्रेम भी समाप्त हो जाता। .....लेकिन.....!'

किसी भी कहानी को अनसुनी नहीं रहना चाहिए, नहीं तो वह श्रापित होकर भटकती रहती है सदियों-सदियों तक.....।

इसके आगे का बहुत-सा सच ऐसा है जो किसी को भी पता नहीं होता!

हम अपने पीछे अपने प्रेम के निशान छोड़ना चाहते हैं। स्थूल निशानियां.. ...वही अमरता पाने की चाह में। कितने मूर्ख हैं हम, हम नहीं जानते कि जब प्रेम पूरा हो जाता है, तो स्थूल निशानियां छोड़ता है, जो समय के साथ मिट जाती है और जब प्रेम पूरा नहीं हो पाता है, तो वायवीय कहानियां छोड़ता है, जो कभी मिट हैं नहीं पातीं। निशानियां समय के साथ फींकी पड़ने लगती है, जबकि कहानियां समय के साथ और भी ज़्यादा ग़हरी होती जाती हैं। यही बोल्ड और ब्यूटीफूल होता है प्रेम में।

....आज तो समय बहुत आगे निकल चुका है। .....लेकिन जो कुछ होना था वह तो हो चुका था.....।

.....फ़िर धीरे-धीरे सबकुछ शांत, सहज और सामान्य होता चला गया!

'.....तो क्या बस यही कहानी है.....?'

कहानी अभी पूरी नहीं हुई है। .....जो होना होता है.....वो हो ही जाता है....समय कितना भी आगे चला जाए, लेकिन कुछ बातें हमेशा रह ही जाती हैं।

घटाटोप अंधेरा....ग़हरा....काला अंधेरा! ऐसा जिसमें हाथ को हाथ नहीं सूझता। आंखें कितनी भी बड़ी खोलो.....बेकार। सब सामने पर कुछ भी नहीं दिखता। .....जैसे बारिश कह रही हो-'आज छोड़ कल नहीं....' झमाझम टूटकर छप्पनों कोटि बारिश....बादलों की घनघोर गर्जन..... बिजली की लगातार कड़क.....भारी आंधी और तेज़ तूफ़ान....। आधी रात....तेज़ हवाओं और तड़पते बादलों के साथ मौसम की विकरालता.. ..। बड़ी-बड़ी बूंदों के साथ मूसलाधार बारिश.....हवा बवंडरी रूप में वेगपूर्वक शामिल होकर बारिश को प्रचंड बनाती....।

लाल-गुलाबी, रंग चम्पई और आंखों में लाल डोरे.....। उस भयानक रात उसे नींद कैसे आती....?ख़्यालों के रंगीन धागों से रंग-बिरंगी सपनीली चुनर बुनती...उघेड़ती मुग्धा शर्म से लाल होती, चटकीली, मख़मली लाल....ये सिंदूरी लाल रंग उसके मन पर भी चढ़ गया था। पसीने से तर हो गई।

मन-ही-मन सोचती रही-आशाढ़ रीता ही बीता। सावन में घटाएं उमड़ी-घुमड़ी, गर्ज़ना-तर्ज़ना की और धरती के स्पर्श को झुकी भी लेकिन. ...। धरती को आकंठ तृप्त कर देने वाला मघा नक्षत्र यों ही छूछा का छूछा ही गुजरा....बहुत बार ग़हराते बादल छाये....घनघोर घटाएं घिरीं .... घोर मेघ गर्ज़नाएं हुईं....परंतु?.....खेत यूं ही पड़ा रह गया....? कितना नामर्द निकला बादल....!

....कहानी अब ख़त्म हो गई है। शेष बची है एक कविता जो सिर्फ़ तुम्हारे लिए ही है-''मैं तुम्हें प्यार करती हूँ वैसे ही/जैसे किन्हीं ख़ास स्याह चीज़ों को प्यार किया जाता है/सबसे छुपाकर/रूह और परछाईयों के बीच/तंद्रिल अवस्था में।''

.....और यही है 'द प्राइस ऑफ लव.....!'

लघु कथा

बत्ती गुल

डॉ. दलजीत कौर
सेक्टर -४० सी
चंडीगढ़ 9463743144

सरकार ने उच्च पदाधिकारियों के वाहनों से बत्तियां उतारने का फरमान जारी कर दिया। ऐसा प्रतीत हुआ ज्यों किसी के सिर से मुकुट उतार लिया हो, या महारानी के मुकुट में से कोहेनूर निकाल लिया हो, अब अगर कोहेनूर निकाल भी लिया तो था तो वह हिन्दोस्तान का ही, जिसका था उसने वापस ले लिया तो बुरा मानने की क्या बात है, पर कुछ लोग तो यूँ उदास हैं ज्यों इज्जत उतर गई हो, जैसे इज्जत उस बत्ती में ही कैद थी।

एक बात तो है सडकों की रौनक जैसे खत्म हो गई है । सड़कों पर एक वीरानगी सी है। पहले जब किसी मंत्री या नेता का काफिला सड़क से गुजरता था तो उसकी जलती बुझती बत्ती और उसके सायरन की आवाज से लोग अपने आप पीछे हट जाते थे । मुझे याद है मेरा बेटा छोटा था, तो सायरन की आवाज के साथ गाने लगता था 'चोर चोर ,चोर चोर, मेरे पति उसकी बात सुन कर कहते 'ठीक कह रहे हो बेटा !हैं तो ये चोर ही, जो लूट कर खा गए पूरा देश । मेरा मन भी थोड़ा उदास तो है, अब वह पहले सी रौनक नहीं मिलेगी ।

मेरे एक नवनियुक्त अफसर की भी बत्ती उतर गई। मैं उनसे मिलने गई तो मातम सा माहौल था। मुझे किसी अनहोनी का आभास हुआ तो मैंने पूछ ही लिया 'सब ठीक है ना। 'रुआंसी सी आवाज में बोले हाँ !बस वह बत्ती उतर गई । इसलिए सबका मूड खराब है। बच्चे कहते हैं कि अब इस कार में नहीं जाएंगे। बत्ती के कारण ही तो स्कूल में हमारा रोब था। अब इस कार का क्या फायदा ।'

अब कोई पूछे कि तुम्हारे बाप को सरकार ने यह कार तुम्हें स्कूल छोड़ने लाने को नहीं दी है। सरकार का काम करने के लिए दी है। मन में तो आया कि कह दूं 'सरकार को सभी वाहन ही वापस ले लेने चाहिए। लोग इनका मिस यूज अधिक करते हैं । परन्तु तभी उनकी पत्नी आ कर बैठ गईं और आँखों में आंसू भर कर बोलीं हमारी तो किस्मत ही खराब है । इन्होंने कितने बुरे दिन देखे। साईकिल पर घूमे ,फिर स्कूटर लिया। अब अगर सुख के दिन आए, तो यह सब ।

मैंने कहा 'भाभीजी बत्ती उतरी है बस द्यकार वापस नहीं ले रही सरकार । 'उन्होंने भसम कर देने वाली दृष्टि से मेरी ओर देखा और बोली 'ऐसी कार किस काम की, रोब तो बत्ती से ही था।'

मैंने भी मातमी चेहरा बना कर उनकी हाँ में हाँ मिलाई । इससे ज्यादा मातम मेरे बस में नहीं था इसलिए वहाँ से चली आई ।

शाम को एक नेता जी मिलने आए जो पिछले चुनाव में ही नेता बने थे। साथ में उनका बच्चा और माताजी भी थे। बातों -बातों में उन्होंने भी बत्ती गुल पर रोष प्रकट किया। अत्याधिक भावुकतापूर्ण स्वर में माताजी बोलीं 'बचपन से कहता था कि बड़ा होकर बत्ती वाली गाड़ी में बैठूँगा । बेचारे के अरमान दिल में ही रह गए । 'उन्होंने दुपट्टे की कोर से आँखें पोंछी, शायद उस देहाती महिला को नहीं पता था कि मंत्री या नेता बनना बत्ती वाली गाड़ी में बैठना ही नहीं होता। इस का अर्थ होता है जिम्मेदारी निभाना, देश का विकास करना ,विसंगतियों को मिटाना, स्वयं को देश के लिए ,समाज के लिए अर्पित कर देना। मैंने भैंस के आगे बीन नहीं बजाइ।"

हम लोग उन्हें घर के बाहर तक छोड़ने आए तो वहाँ से एक एम्बोलेंस गुजरी। बच्चे ने जिज्ञासापूर्वक पूछा 'इस गाड़ी की बत्ती क्यों नहीं उतरी ?'

सभी को चुप देख कर मैंने उसे समझाया 'यह गाड़ी मरीजों को अस्पताल तक ले जाती है। ज्यादा बीमार मरीजों को जल्दी अस्पताल पहुँचाने के लिए इसपर बत्ती और सायरन लगे होते हैं ताकि लोग पीछे हट जाए ।"

बच्चे को कुछ समझ आया या नहीं, पता नहीं द्यपरन्तु मुझे लगा जैसे बीमार मानसिकता ,अपाहिज नेता और पंगु अफसरों को ऐसी ही गाड़ी की जरूरत है ।

कहानी

शिक्षा बिक्री केन्द्र

संजीव निगम

जब भैयाजी सब्जी बेचते बेचते बुरी तरह से उकता गए, तब किसी ने उन्हें सुझाव दिया कि सब्जी बेचने से ज़्यादा मुनाफा तो शिक्षा बेचने में है। बात बहुत पैनी थी। खंजर बन कर सीधे भैयाजी के दिल में उतर गयी। बस ठान लिया कि अब शिक्षा की ही दुकान खोली जायेगी। उन्हें यकीन हो गया कि उनकी आठवीं कक्षा तक प्राप्त उच्च शिक्षा के पके कददू को काटने का सही वक्त आ गया है। उन्होंने एक नजर अपनी खोलीनुमा दुकान पर डाली और खुशी से गदगद हो गए। नया कारोबार शुरू करने के लिए एकदम उत्तम जगह तो उनके हाथ में ही है। बाजार के बीचों बीच , सड़क के किनारे , ग्राउंड फ्लोर पर पक्का कमरा। बस एक ही दिक्कत थी। उन्हें सब्जी बेचने के तो सारे गुर मालूम थे पर शिक्षा कैसे बेची जाए ये मालूम नहीं था। इसके लिए उन्होंने पांच किलो सब्जी के टोकरे के साथ एक रिटायर्ड हेड मास्टर की शरण गही। लौकी और भिंडी की ताजगी से खुश होकर हेड मास्टर साहब ने उन्हें ज्ञान प्रदान किया। हेड मास्टर ने कहा, 'पब्लिक स्कूल सफलतापूर्वक चलाने के गुण तो तुम्हारे पास पहले से ही मौजूद हैं। एक तो तौलते समय डंडी मारना और दूसरा सब्जी चाहे कितनी सड़ी या बासी क्यों न हो उसे ताजा बता कर ऊँचे दाम पर बेचना। इसलिए भले ही तुम्हारे स्कूल में एक भी बच्चे का एडमिशन न हुआ हो पर एडमिशन के लिए आने वाले हर माँ बाप के सामने स्कूल में अब कोई जगह न होने की डंडी मारते रहना। दूसरा यह कि तुम्हारे स्कूल में पढ़ाई का स्तर चाहे कितना भी घटिया क्यों न हो फीस खूब ऊंची रखना।' इस गुरु ज्ञान को प्राप्त करके इधर भैयाजी हेड मास्टर के घर से निकले उधर हेड मास्टर को सब्जी के टोकरे में नीचे सड़े गोभी टमाटर मिले। उसके अगले ही दिन से जी आर फ्रेश सब्जी केंद्र का बोर्ड उतर गया और उसकी जगह बिल्कुल उसी साइज का जी. आर. फ्रेश नर्सरी स्कूल का बोर्ड लग गया। जी. आर. उनके पूज्य पिताजी 'घासी राम' के नाम का लघु स्वरुप है। उनका मानना है कि उनके स्वर्गीय पिताजी के नाम की वजह से ही उनकी सब्जी की दुकान इतनी अच्छी चलती रही है कि रोज रात तक उनकी सड़ी सब्जियाँ तक बिक जाती हैं। इसलिए उसी शुभ नाम का प्रयोग नए धंधे में भी करना भैयाजी का पिताजी की तरफ श्रद्धा की बजाय पूरी तरह से व्यावसायिक फैसला था। स्कूल में टीचर के लिए दसवीं कक्षा में ही अपने प्रेमी के साथ फरार हो जाने वाली अपनी साली को उन्होंने पूर्णतया योग्य पाया । जिसने इतनी छोटी सी उम्र में ही प्यार में घर से भागने का कीर्तिमान स्थापित किया हो, उससे ज्यादा प्यार से बच्चों को और कौन पढ़ा सकता है? खुद वे अपना परम्परागत बंडी पजामा त्याग कर पैंट कमीज और टाई पहन कर हेड मास्टर बन कर शिक्षा की मार्केटिंग के लिए तैयार हो गए हैं । उन्हें पूरा यकीन था कि पब्लिक स्कूल का बोर्ड देख कर पब्लिक अपने बच्चों लेकर खिंची चली आएगी और एक दिन उस जगह बच्चे भी उसी तरह से भरे होंगे जैसेकि पहले सब्जियां भरी रहती थीं।

कुछ कुछ ऐसा ही होने लगा। भैयाजी की दुकान पर 'जी. आर. फ्रेश सब्जी केंद्र' का बोर्ड उतर कर, जी. आर. फ्रेश नर्सरी पब्लिक स्कूल' का बोर्ड लगते ही , दाखिले आने शुरू हो गये। इसके लिए उन्हें कोई खास मशक्त भी नहीं करनी पड़ी थी। कल तक जो लोग उनके द्वारा बेचीं जा रही सब्जियों के ग्राहक थे , वही अब उनके द्वारा उपलब्ध शिक्षा के भी ग्राहक बन गए। लोगों को न सब्जी के ताजेपन का पता था और न शिक्षा के स्तर का । उन्हें तो बस इतना पता था कि भैयाजी की दुकान तक पहुँचने का रास्ता आसान है, जहाँ कार और स्कूटर आसानी से पार्क हो जाते हैं। रात को दफ्तर से लौटते वक्त सब्जी खरीद कर फटाफट लौटने की जितनी सुविधा थी, वही अब सुबह सुबह दफ्तर जाते वक्त बच्चे को स्कूल में जल्दी जल्दी पटकते वक्त की हो गयी। गाड़ी लेकर फटाफट निकलने से एक बड़ी सुविधा यह रहती है कि बच्चे का रोना धोना सुन कर मूड अहफ होने का मौका कम रहता है। भैयाजी और उनकी साली माँ बाप के सामने जितने प्यार से बच्चे को अपने स्कूल के अंदर लेते हैं, उसे देख कर तो यह संदेह होने लगता है कि बच्चे के असली माँ बाप कौन हैं ? भैयाजी के ताजे ताजे रंगाई हुए स्कूल की दीवारों में से अभी भी सब्जियों की बास आती है। मार्केटिंग के उस्ताद भैयाजी ने उसका भी लाभ उठा कर अपने प्रचार पम्पलेट में छपवा दिया कि हमारे यहां शिक्षा का पौष्टिक वातावरण है और इस बात के भी सौ रुपये अतिरिक्त फीस में जोड़ दिए। उस एक दबे दबे से कमरे में पार्टीशन करके दो दड़बानुमा कक्षाओं में बैठे बच्चों को देख कर ऐसी फीलिंग आती है जैसे दो बड़े से टोकरों में ढेर सारी सब्जियां ठुंसी हों। दाखिला करना तो भैयाजी ने तब रोका जब बच्चे उनकी हेडमास्टर वाली मेज के नीचे तक बैठाने की नौबत आ गयी। भैयाजी का अंदाज सही था। बोर्ड पर लिखे पब्लिक स्कूल में वही आकर्षण है जो शॉपिंग माल्स में लिखे, 'बम्पर सेल' शब्दों में होता है, लोग अपने आप खिंचे चले आते हैं। फीस देते वक्त लोगों ने भैयाजी का कोट, टाई, पैंट देखा, उनका चेहरा या योग्यता नहीं। लोग दीवार पर टंगा एसी देख कर इतना खुश हो गए कि टीचर को एबीसीडी आती है या नहीं ये भी जाना नहीं। इसलिए भैयाजी को भी सब्जीवाले से सर होने में सलाद बराबर भी संकोच नहीं हुआ। ममता दिखाने के फैशन में डूबी मम्मियों और जरुरत से ज्यादा व्यस्त दिखते पापाओं को लुभाने के लिए वे सॉरी, प्लीज, ओ शिट, जैसे गिने चुने शब्दों का मसाला डाल कर ऐसी हिन्दीमयी अंग्रेजी की सब्जी परोसते हैं जैसे होटलों में मिक्स वेजिटेबल परोसी जाती है। अपने इस पहले ही प्रयास की सफलता से भैयाजी इतने उत्साहित हैं कि अब उनकी योजना जल्दी ही शिक्षा का एक सुपर मार्किट और फिर उसके बाद शिक्षा का पूरा मॉल ही खोलने की बन गयी है।

कहानी

रावण का दशहरा

प्रहलाद श्रीमाली
पार्क टाउन, चेन्नई,
मो. 9445260463

दशहरे की शाम। देहात के थाने में वही रोज का काम। कर्तव्य से उदासीन सिपाही और ड्युटी पे दारोगा पीकर जाम, पंडे निष्काम। वहां से गुजरते हुए चौकीदार ने सलाम ठोका, तो अभी-अभी आए नशे में धुत्त दारोगा ने प्यार से रोका और घुडकते हुए पूछा कहो गांव में क्या चल रहा है? चौकीदार ने हड़बड़ाते हुए कहा हुजूर रावण जल रहा है !

रावण जल रहा है! तो उसे टोको। आत्महत्या का अपराध करने से रोको! दारोगा का हुकम सुन चौकीदार का माथा ठनका। वो जान गया कि दारोगा तो सनका। समझाते हुए बोला हुजूर, वो खुद नहीं जल रहा। गांव वाले मिलकर जला रहे हैं! दारोगा ने गुलाबी आंखें लाल की। गुर्राकर बोला क्या उन्हें फिकर नहीं है अपनी खाल की! रावण को मिलजुल कर जला रहे हैं! हमें साथ लिए बिना इतनी खतरनाक गैरकानूनी मर्जी चला रहे हैं! जल्दी बताओ, क्या ये ऑनर किलिंग का केस है? या राजनीतिबाजी की खूनी रेस है?तुम तो जानते ही हो, अपने यहां दोनों के रेट भिन्न हैं। वैसे गांव में हिंसा से अपुन तहे दिल से खिन्न हैं! ठीक-ठीक बताना, असल बात क्या है?और हां, रावण की जात क्या है ?

ऐरों-गैरों के सामने पूरा अकडू और अभिमानी था। पर यूं चौकीदार एक चिंतनशील प्राणी था। बोला-हुजूर, २१वीं सदी में भला जात की क्या बात है। फिर रावण तो आज अपने आप में एक जात है। अलबत्ता मायावी रावण की जात कौन जान सकता है। रावण तो किसी भी जात में होने की ठान सकता है!

सुनकर दारोगा गुर्राया क्या मतलब! ये क्या बकवास है! लगता है पौवा नहीं आज तू पूरी बोतल का दास है। कंबख्त मेरे हाथों पिटकर अभी तू रोएगा। जरा बता तो, जब रावण खुद एक जात है, तो वो किसी भी जात में कैसे होगा ?

चौकीदार बोला हुजूर, बेशक बोतल मेरे पास है। फिर भी मेरा दिल उदास है। जनाब, मेरी भी क्या जिंदगानी है। बोतल में दारू नहीं, पीने के लिए पोखर से भरा मटमैला पानी है! पर साहब जात का सवाल मत उठाना। दुष्ट रावण का तो चारों ओर ठिकाना हैं रावण तो हर जगह मौजूद है। दफ्तर, आश्रम हो चाहे थाना। सर जी, रावण पुलिस की जात का भी हो सकता है। और नेता की जात में घुसकर जनसेवा का झंडा भी ढो सकता है। अफसर, बाबू और चपरासी की जात में भी रावण पाया जाता है। डाक्टर, वकील, इंजीनियर जैसी जात में भी रावण द्वारा ही जनता को रूलाया जाता है। व्यापारी की जात में भी मिलावट, तस्करी जमाखोरी रावण ही करता है। शिक्षक, साहित्यकार की जात में भी रावण ही जहर भरता है। हुजूर! आप तो यह सब मुझ से ज्यादा जानते हैं। किस जात में कहां, कौन रावण है, बखूबी पहचानते हैं!

सुनकर दारोगा मुस्कुराया। आईने पर नजर पडी तो चकराया। अपने चेहरे में उसे रावण नजर आया। दारोगा बौखलाया, खिसियाया। फिर चौकीदार पर चिल्लाया खैर! जात की बात जाने दे! तू मुझे रावण को जलाने वालों के नाम पते ठिकाने दे !

चौकीदार ने दिमाग दौडाया। तब दारोगा को बताया हुजूर गांव वाले तो रावण को सिर्फ जला रहे हैं। पुरानी परंपरा चला रहे हैं। वैसे रावण को तो राम जी ने मारा है। मारा क्या, एक तरह से तारा है, भव सागर से उबारा है !

दारोगा चौंका कौन राम जी! अपने पूर्व विधायक दंगाराम जी ने! पर यार, वे तो जेल में हैं। जल्दी बता, बेल पर छूटे हैं या कुछ ले-देकर इस खूनी खेल में हैं।

चौकीदार कसमसाया। सचमुच पानी सिर से ऊपर चढता जा रहा था। अब उसे ऐसे वक्त इस तरफ से निकलने के लिए खुद पर गुस्सा आ रहा था। उसने खुलासा करने में महसूस की हेठी। फटाफट बात लपेटी हुजूर, माफ करें खता! दंगाराम जी के बारे में तो मुझे कुछ नहीं पता! पर आप जाना चाहें तो जल्दी कीजिए। और मुझे अपने थोड़े बीमार भाई की रक्षा करने पूरी बीमार अस्पताल तक जाने की इजाजत दीजिए !

जलाए जा रहे रावण का केस लपकने धुत्त दारोगा जब गांव की ओर जा रहा था, सामने से आ रहा महान लोकतंत्र का व्यवहारिक वोटर दारोगा की नजर से बचने के लिए, काटे जा चुके हरे भरे पेडों की ओट पा रहा था। गांव की ओर से उठता धुंआ दारोगा का जोश और रोश बढाने लगा। वारदात का ऐसा पुख्ता सबूत देखते हुए उसका असुर मन सुर में गाने लगा।

सूखते तालाब के किनारे मंदिर के सामने दारोगा ने धडधडाती जीप रोकी। राम लीला देखने खडी उत्साही भीड चौंकी। अचरज बहुत बडा था। वहां पटाखों के धमाके के साथ कौन जल रहा था?दारोगा का चेहरा लेकर रावण तो उनके सामने खडा था! दारोगा को देखते ही सरपंच और पटवारी से पहले हेड कांस्टेबल अपनी तोंद संभालते हुए आगे बढा। झुंझलाते हुए दारोगा को मुस्कुराना पडा। क्यों कि हेड साला थाने का घर जैसा भेदी ठहरा। और दारोगा का भेद था बडा गहरा। किंतु दारोगा के मन में महा क्रोध था। नशे में चूर होने पर भी इस मामले में हेड द्वारा गद्दारी की चेष्टा का खरा बोध था। मदहोशी के बावजूद अपने इस होश के लिए दारोगा ने खुद को दी शाबाशी और तय किया, थाने पहुंचते ही निकालूँगा ससुरे की सारी बदमाशी !

हेड कांस्टेबल ने सलाम ठोकते हुए कहा सर जी, कब आए! आप छुट्टी पर थे, इसलिए जनता की सेवा करने मुझे अकेले आना पडा। ढीठ रावण को जोर लगवाकर जलाना पडा। अलबत्ता आप होते तो ज्यादा मजा आता। हुजूर, आपको तो देखते ही रावण यूं ही जल जाता! अब केस-खोर दारोगा मामला समझ गया। खिसियाते हुए उसका मिजाज फौरन बदल गया। पर ये कमीना हेड बनावटी आत्मीयता जता रहा है! कंबख्त परोक्ष रूप से मुझे रावण से भी ज्यादा रावण बता रहा है। वैसे बेशक सुनने में नहीं है अच्छी। पर बात है तो बिल्कुल सच्ची! भला मेरे आगे रावण की क्या औकात! सोचकर इतराते हुए दारोगा ने पटवारी और सरपंच से की मुलाकात। उनकी बातों को जोडने वाले बडे खतरनाक धागे थे, जो सिद्ध करते हैं, वे दोनों भी रावणपने में रावण से आगे थे।

लौटते समय गांव के कच्चे रास्ते के पक्के चढाव पर दारोगा का नशा उतार पर था। इसलिए गुस्सा पूरी तरह पुलिसिया धार पर था। मादर। चौकीदार ! हमको उल्लू बना गया साला! कहकर दारोगा ने हेड कांस्टेबल को सारा वाकया सुना डाला। बात जानकर हेड मन में खुश हुआ। प्रकट में सहलाने के लिए उसने दारोगा की दुखती रग को छुआ। बोला ससुरा आपको झांसा देकर अकडता, तनता है ! सर जी, इस हरामखोर चौकीदार पर तो पुलिस को गुमराह करने का सीधा केस बनता है। साले को उल्टा टंगवा कर लाएंगे। हवालात की भेजा सुधारक हवा खिलाएंगे !

ये प्रेक्टिकल प्रस्ताव सुनते ही गहरा उठी चर्बिले चेहरे की बेशर्म लाली। दारोगा ने चमकती आंखों से हेड कांस्टेबल पर मीठी नजर डाली। कांपते हाथों से उसकी पीठ थपथपाई। और खुमारी भरी भावुकता में बोला बस, तुम्हारे जैसे निष्ठावान, समर्पित भाव भरे जागरूक जवानों से ही पुलिस विभाग की इतनी पैठ है भाई !

बेताब दारोगा को अपने भ्रष्टाचार की श्रृंखला से भी लंबी लग रही है, इंतजार की डोर। अस्पताल की बीमार हवा से बचकर, चौकीदार तेजी से आ रहा है गांव की ताजा हवा की ओर !

कहानी

वैश्य साहित्यकार सम्मेलन का रंगारंग कार्यक्रम

मनोज कुमार झा
दरभंगा, बिहार
मोबाईल : 7509664223

सेठ जी शहर में साहित्य सम्मेलन करवा रहे हैं। चर्चा जोरों पर है। सेठ जी समाज सेवी पहले से थे, अब साहित्यसेवी भी हो गए। इनका छोटा लड़का दिल्ली विश्वविद्यालय से हिंदी में एम.ए. कर रहा है। साहित्यिक है। श्रृंगार रस की कविताओं से एक डायरी भर रखी है। सेठ जी अपने बेटे की साहित्य प्रतिभा से गद्‌गद्‌ हो गए। उन्होंने उन कविताओं का एक संग्रह छपवा दिया। बेटे ने काव्य संग्रह का समर्पण अपनी कविताओं की प्रेरणा प्रेरणा अग्रवाल के नाम किया जिनसे वह दिन-रात लगातार प्यार करता था। पाठकों के विशेष ध्यानाकर्षण के लिए उसने उनकी मोहक अदा में एक तस्वीर भी संग्रह में छपवाई थी। प्रेरणा अग्रवाल के पिता जैसा कि स्वाभाविक है, एक बड़े व्यवसायी थे। तीन बंगलों, चार कारों और आधा दर्जन देशी-विदेशी कुत्तों के मालिक थे। प्रेरणा अग्रवाल छह बहनें थीं। इस तरह से सबके हिस्से एक-एक कुत्ता हुआ।

सेठ जी इस बात से काफी प्रसन्न थे कि उनके प्रतिभाशाली पुत्र ने प्रेम करने के मामले में भी जाति-बिरादरी का ख्याल रखा और बिना भाइयों की बहन से प्यार किया जो अभी लिव-इन से होता हुआ कहीं शादी में बदल गया तो ससुर के माल के छठवें हिस्से का हकदार हो जाएगा। ससुराल की जायदाद बिरलों को ही नसीब होती है।

बहरहाल, सेठ जी ने अपने कवि-पुत्र से कहा, ''बेटा, मैं तुम्हारे काव्य संग्रह का विमोचन किसी श्रेष्ठ वैश्य साहित्यकार से कराना चाहता हूं। इस अवसर पर एक वैश्य साहित्यकार सम्मेलन हो जाए तो अच्छा रहे। इस देश में तरह-तरह के साहित्यिक संगठन हैं, पर वैश्य साहित्यकारों का एक भी संगठन नहीं है। मेरी इच्छा है कि वैश्य साहित्यकारों का भी एक राष्ट्रव्यापी संगठन हो और तुम इसके संस्थापक अध्यक्ष बनो। इससे तेरे यश और कीर्ति में चार चांद लग जाएंगे। मैंने साहित्य तो कभी नहीं पढ़ा, पर सुना है कि हिंदी साहित्य में वैश्य साहित्यकारों का बड़ा योगदान रहा है। एम.ए. करने के बाद तुम इसी विषय पर पी.एच.डी. भी कर लेना। अब तुम किसी ऐसे साहित्यकार का पता लगाओ जो वैश्य हों, उन्हें बुलाने की जिम्मेदारी मेरी। और सुन, तू तो विद्वान है। 'हिंदी साहित्य में वैश्य साहित्यकारों का योगदान' शीर्षक से एक लेख लिख डाल। सम्मेलन में वह पढ़ना।''

पुत्र ने कहा, ''डैड, आपका यह विचार अनोखा है। मैं इसका पता लगाता हूं कि अभी सबसे बड़ा साहित्यकार कौन है। लेख भी लिखूंगा। याद आया डैड, जिन्हें आधुनिक हिंदी साहित्य का निर्माता कहा जाता है, वे भारतेंदु हरिश्चंद्र वैश्य ही थे। इस तरह तो साहित्य पर वैश्यों का कब्जा इतिहाससम्मत माना जाएगा। उनके ग्रुप में एक बालमुकुंद गुप्त भी थे। अपने हरियाणे के ही थे। उन्होंने 'शिवशंभु के चिट्ठे' लिखा था और डैड, 'भारत-भारती' लिखने वाले मैथिलीशरण गुप्त, उनके अनुज सियारामशरण गुप्त ये सभी वैश्य लेखक ही थे। छायावाद के दौर में जयशंकर प्रसाद वैश्य ही थे। इनका महाकाव्य 'कामायनी' अपने सिलेबस में है। नई कवितावादियों और प्रगतिशीलों में अनेकों नामी वैश्य साहित्याकर हुए हैं। डॉ. जगदीश गुप्त, केदारनाथ अग्रवाल, भारतभूषण अग्रवाल, नेमिचंद जैन और भी ना जाने कितने। संभवतः जैनेन्द्र भी वैश्य ही थे, पर कन्फर्म करना पड़ेगा। अनेकों वैश्य साहित्यकार हैं डैड, पर दिमाग पर जोर डालना पड़ेगा। लेख तो मैं तैयार कर लूंगा। पर ज्यादातर साहित्यकार अपने को मार्क्सवादी कहते हैं, ये जाति-बिरादरी नहीं मानते। क्या ये वैश्य साहित्य सम्मेलन में आएंगे?''

''बेटे, मैं मानता हूं तू विद्वान है। पढ़ाई में मैं तेरे आगे कुछ नहीं हूं। तूने यह जो कहा मार्क्सवादी, इसके बारे में मैं कुछ नहीं जानता। पर हमारे समाज में जातिवाद के आगे सब वाद फेल हैं। और वैश्य साहित्यकारों का पता कर किसी को विमोचन के लिए तैयार कर। साहित्यकार वैश्य हो या किसी अन्य जाति का, स्वभाव से ही सुरा-सुंदरी व पत्रम्‌-पुष्पम्‌ का प्रेमी होता है। हमारे लिए मांस-मदिरा वर्जित है, पर साहित्यकारों के लिए नहीं। उन्हें सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जी से ही यह छूट मिली हुई है। पर बेटा, तुम परिवार की परंपरा को ध्यान में रखते हुए मांस-मदिरा से दूर रहना। सुंदरियों के बारे में मैं कुछ नहीं कहूंगा। इन्हें शास्त्र में वर्जित नहीं माना गया है। और बेटा, साहित्य साधना बिना सौंदर्योपासना के नहीं हो सकती। इतना तो विद्वान अफसरों की संगति में मैं समझ चुका हूं। क्या कहूं बेटा, अक्सर इनकम टैक्स के बड़े अफसर कवि भी होते हैं। उनकी सेवा हमें अफसर के नाते अलग और कवि होने के नाते अलग से करनी पड़ती है।''

''डैड, ये सुरा को मेरे लिए वर्जित कर आपने ठीक नहीं किया। फिर मैं कैसे साहित्यकार बन पाऊंगा?'' सेठपुत्र ने इसरार किया।

''बेटे, अभी तू छात्र है। जब स्थापित साहित्यकार बन जाना तो इम्पोर्टेड सुरा ग्रहण कर सकते हो। उसे शराब नहीं माना गया है। हाकिमों का साथ देने के लिए कभी-कभी तो यह मैं भी ग्रहण कर लेता हूं, पर भक्ष्य-अभक्ष्य क ख्याल रखना। और बेटे, एक विचार मन में कौंधा है। लेख लिखते हुए इस बात का भी उल्लेख कर देना कि साहित्य क्या, इस देश को अंग्रेजों से आजाद भी एक वैश्य ने ही कराया। महात्मा गांधी तो वैश्य ही थे बेटा। इसलिए समाज में वैश्यों का स्थान सर्वोपरि है।''

''हां, डैड! यह तो बड़ी दूर की सूझी आपको। मैं जरूर इसे हाइलाइट करूंगा। पर डैड, जब तक मैं स्थापित साहित्यकार नहीं हो जाता तब तक ठीक है शराब नहीं पीऊँगा, पर क्या बियर पर भी रोक रहेगी? इसकी इजाजत तो दे देते डैड। नहीं तो साहित्यकार बनने की दिशा में कदम कैसे उठेंगे?''

''अरे बेटे, मेरा कहना है कि साहित्यकार बनने के लिए बहुत संघर्ष करना

पड़ता है। साहित्य अपने आप में एक नशा है। इसलिए जो भी करना छुपछुपा कर ही करना, बदनामी मोल लेना बुद्धिमानी नहीं है। इस बात को किसी से मत बताना कि तुम प्रेरणा जी से लिव-इन में हो। वैश्य समाज में अभी यह बात नहीं चली है। तुम तो शादी के लिए प्रपोज करो। धूम-धाम से तेरी शादी करूंगा। ऐसी ससुराल उन्हें ही नसीब होती है जिन्होंने पूर्व जन्म में बहुत पुण्य कार्य किए हों। प्रेरणा जी के पिता जी कोई न कोई बिजनेस तुम्हें संभालने के लिए दे ही देंगे। तुम मौज करोगे बेटा मौज। अभी फिलहाल पूरा ध्यान विमोचन और सम्मेलन पर रखो। मैंने सभी अखबारों में खबरें छपवाने का पूरा इंतजाम कर लिया है।'' कहते हुए सेठ जी गद्दी पर गए और पुत्र महोदय सद्य प्रकाशित काव्य संग्रह के समर्पण पृष्ठ पर छपी प्रेरणा जी की तस्वीर में खो गए।

इधर सेठ जी ने कव्य संग्रह के विमोचन और वैश्य साहित्यकार सम्मेलन की तिथि तय कर दी। उनका सिद्धांत था 'शुभस्य शीघ्रम्।' हिंदी के उन साहित्यकारों के बड़े-बड़े पोस्टर तैयार करवाए जाने लगे जो जाति से वैश्य थे। इनमें भारतेंदु हरिश्चंद्र और मैथिलीशरण गुप्त का नाम सर्वोपरि था। सेठ जी के पुत्र ने भी 'हिंदी साहित्य में वैश्य साहित्याकारों का योगदान' विषय पर एक धांसू लेख तैयार कर लिया था। अब वे किसी ऐसे बड़े साहित्यकार को विमोचन के लिए तैयार करने दिल्ली गए जो जाति से वैश्य हों। वैश्य तो कई थे, पर वैश्य साहित्यकार सम्मेलन के नाम पर भड़क उठते थे। आखिर बड़ी हिम्मत कर डॉ. जैन का पता हासिल किया और दरवाजे की घंटी बजा दी। उन्होंने अपना विद्यार्थी जान बैठाया, पानी पिलवाया और नौकर को चाय बनाने के लिए कहा। पर जब इन्होंने वैश्य साहित्यकार सम्मेलन और काव्य संग्रह के विमोचन की बात कही तो भड़क गईं और डांट कर भगा दिया।

कई जगह डांट खाने के बाद जब उनकी हिम्मत जवाब देने लगी और महसूस हुआ कि अब सारे किए-धरे पर पानी फिरने वाला है तो बड़े मायूस हुए। निराश कमरे में पड़े प्रेरणा जी के मैसेज का इंतजार कर रहे थे, तभी बियर की बोतलें लिए दो दोस्त आ गए। अभी गिलासों में बियर ढलनी शुरू हुई ही थी कि प्रेरणा जी भी आ गईं। लो कट जींस और टॉप में गजब ढा रही थीं। एक गिलास और लाई गई। दो बोतल दम साध कर पी गई, फिर आगे पीने के साथ ही विचार-विमर्श का दौर शुरू हुआ। प्रेरणा जी ने कहा कि वे एक प्रोफेसर को जानती हैं जिन्होंने साहित्य के आलोचक के रूप में बड़ा नाम कमाया। कट्टर मार्क्सवादी थे। हैं वैश्य ही। जब मैं बी।ए। (हिंदी ऑनर्स) में थी तो हाथ धोकर मेरे पीछे पड़े थे। पर मैंने भी एक लिमिट से ज्यादा उन्हें नहीं बढ़ने दिया। कहते थे कि तुम्हें कवयित्री के रूप में स्थापित करवा कर ही रहूंगा। उन दिनों कई बड़ी पत्रिकाओं में मेरी कविताएं छपवाईं। भगवान जानता है, मैंने आज तक एक भी कविता नहीं लिखी, पर उन्होंने दो साल के भीतर मेरी दो दर्जन कविताएं बड़ी साहित्यिक पत्रिकाओं में फोटो सहित छपवा दी। पर बदले में उन्हें कुछ खास नहीं मिला तो निराश हो गए और मेरी एक सहेली जो मुझसे कुछ कम सुंदर थी, उसे साहित्यकार बनाने का बीड़ा उठा लिया। सुनते हैं, अब उन्होंने मार्क्सवाद से घोषित रूप से नाता तोड़ लिया है, किसी संगठन में भी नहीं हैं। प्रतिबद्ध तो हैं, पर बस सुरा-सुंदरी से। इनसे मैं मिलूं तो काम बन सकता है। फीस तो सभी लेते हैं, ये तैयार हुए तो इन्हें कुछ ज्यादा दे देंगे। मैं मिल लेती हूं, आज ही शाम को जाऊंगी।

''मैं भी चलूंगा।'' सेठपुत्र बोले।

प्रेरणा जी ने कहा, ''तुम्हारे जाने से बनता काम बिगड़ जाएगा। तुम घबराओ नहीं, मैं उन्हें लिमिट से आगे जाने नहीं दूंगी।'' इस पर सहमति बन गई। बियर भी खत्म ही हो चली थी।

देर रात जब प्रेरणा जी प्रोफेसर साहब से मिल कर आईं तो सेठपुत्र जिन की चुस्कियां ले रहे थे। आते ही प्रेरणा जी ने कहा कि काम बन गया। पच्चीस मांग रहा था, पर मैंने कह-सुन कर बीस पर राजी कर लिया। इम्पोर्टेड व्हिस्की का इंतजाम रखने को कहा है।

''और कुछ?'' सेठपुत्र ने उतावलेपन से पूछा।

''और क्या? देखते ही गले से लगा लिया और कमर पर हाथ फेरने लगा। पी रहा था। बाल खिचड़ी हो गए हैं। बूढ़ा लग रहा था। शादी तो उसने की ही नहीं।''

''और कुछ?'' सेठपुत्र ने फिर पूछा।

''और क्या यार, कमर के नीचे थपकी दे दी तो क्या हुआ?डोंट बी स्टुपिड। चलो, डिनर कर के आते हैं।''

निश्चित तिथि पर धूमधाम से काव्य संग्रह का विमोचन हुआ। कई साहित्यकार आए, पर उनमें जिला स्तरीय साहित्याकरों की संख्या ही ज्यादा थी। राज्य स्तरीय भी नामालूम से एक-दो वैश्य साहित्यकार आ गए। हां, जिले के तमाम अफसर कार्यक्रम में लगातार मौजूद रहे। प्रेरणा जी ने मंच संचालन किया। रेशमी साड़ी में उनकी खूबसूरती देखते ही बनती थी। सेठ जी उनसे बेटा-बेटा कह के बातें कर रहे थे। मंच की सजावट देखने लायक थी। भारतेंदु हरिश्चंद्र, मैथिलीशरण गुप्त और जयशंकर प्रसाद वैश्य साहित्यकार के रूप में स्थापित कर दिए गए थे। पूरे कार्यक्रम की वीडियो रिकार्डिंग हो रही थी। दर्शकों-श्रोताओं को जूस, कोल्ड ड्रिंक, आइसक्रीम, फ्रूट सलाद आदि पेश किए जा रहे थे। काव्य संग्रह के विमोचन की औपचारिकता के बाद जब सेठपुत्र ने अपना 'शोधलेख' पढ़ा तो अफसरों और स्थानीय कॉलेजों के प्राध्यापकों-प्रोफेसरों ने वाह-वाह किया। इस कार्यक्रम की समाप्ति के बाद चुने हुए लोगों के लिए एक विशेष कक्ष में सुरापान का प्रबंध था।

दूसरे दिन वैश्य सम्मेलन के साथ ही कवि सम्मेलन का कार्यक्रम भी था। दिन में वैश्य साहित्य सम्मेलन संपन्न हुआ। लगभग सभी वक्ताओं ने एक सुर से कहा कि जब हिंदी साहित्य के निर्माता भारतेंदु ही वैश्य थे तो साहित्य का भविष्य वैश्यों के हाथों ही सुरक्षित रह सकता है। वक्ताओं ने यह भी कहा कि आज साहित्य पर गंभीर खतरा मंडरा रहा है, पर जब हमारे बीच सेठ जी के पुत्र के समान कवि और प्रेरणा जी जैसी कवयित्री मौजूद हैं, साथ ही वैश्यों की नई पीढ़ी बिजनेस के साथ ही साहित्य में भी योगदान करने को तैयार है तो हम हर खतरे पर काबू पा लेंगे।

रात में कवि सम्मेलन में समां बंध गया। यह देखकर कि सिर्फ कविताओं से श्रोताओं का भरपूर मनोरंजन संभव नहीं है, सेठ जी ने आईपीएल की तर्ज

पर चीयर गर्ल्स का इंतजाम भी कर रखा था। ये मुंबई से पलायन कर आई बार बालाएं थीं। ये मंच पर चारों ओर कमर मटका रही थीं और पीकर मस्त हुए कवियों को बदमस्त बना रही थीं। हर कविता-गीत के बंद और गजल के हर मिसरे के बाद ये डांस करतीं। एक कवि के काव्य पाठ के बाद पांच मिनट का चीयर गर्ल डांस होता, फिर दूसरे कवि को मौका मिलता।

कुल मिला कर काव्य संग्रह का विमोचन, वैश्य साहित्य सम्मेलन और काव्य पाठ के साथ चीयर गर्ल्स का रंगारंग कार्यक्रम बेमिसाल रहा। कार्यक्रम के अंत में अफसरों, स्थानीय नेताओं और पत्रकारों की बधाइयां स्वीकार करने क बाद धन्यवाद ज्ञापन करते हुए सेठ जी ने कहा कि वे हर साल इस तरह का कार्यक्रम आयोजित करेंगे और उन्हें पूरी उम्मीद है कि वैश्य समुदाय जैसे बिजनेस में अपनी सर्वोपरि भूमिका निभा रहा है, वैसे ही साहित्य के प्रचार-प्रसार में भी अपनी भूमिका निभाएगा। इसे इतिहास ने साबित किया है कि हमारी जाति में साहित्यकारों की कमी नहीं रही है। इसे हमारे बेटे और प्रेरणा जी ने भी साबित किया है। साहित्य सेवा देश की सबसे बड़ी सेवा है। मैं चाहता हूं कि हर वैश्य परिवार से एक न एक युवा साहित्य के क्षेत्र में जरूर आवे। तब हमारा देश फिर से विश्वगुरु कहलाने लगेगा।

अंततः तालियों की जोरदार गड़गड़ाहट के साथ सम्मेलन समाप्त हुआ।

आलेख

रामराज्य का स्तुति गान

अक्षय नेमा मेख
मेख, नरसिंहपुर मध्य प्रदेश
9406700860

तुलसीदास ने रामायण में रामराज्य का जिक्र क्या किया?हम भारतीय तो उसी के पीछे पड़ गए। रह-रह कर नवजात बच्चे की तरह चौंक पड़ते है। फर्क बस इतना होता है कि बच्चा नींद में चौंककर रोने लगता है और हम रामराज्य अलापने लगते है। क्योंकि हम रामराज्य को त्रेतायुग से उठाकर इस भीषण कलयुग में लाना चाहते है।

इसके लिए कई दशकों से तैयारियां भी की जा रही है। राम के नाम पर कई क्विज कांटेस्ट भी खेले गए। अखिल भारतीय बैठकें हुई। कई प्रबुद्ध लोगों से मशविरा लिया गया। कई साधु-संतों को मंत्री पद सुनिश्चित किये गए। यहां तक की कई ऐसे-वैसों को नेतागिरी सिखाकर कैसे-कैसे बना दिये गए। पर फिर भी रामराज्य नहीं आया। तब किसी ने बताया कि- रामराज्य है, बिना प्रयत्न के नहीं आयेगा। इसके लिए पहले प्रजा को दुखी होना पड़ेगा। राम को भजना पड़ेगा। तब जाकर राम प्रसन्न होंगे और राम राज्य धरती पर उतार देंगे। इस सलाह से हमारी सरकारों को संबल मिला। जनता को दुखी कैसे किया जाए अब यह मुद्दा हो गया। फिर भ्रष्टाचार, महंगाई, बेरोजगारी, अशिक्षा, भुखमरी, बलात्कार और हत्याएं शुरु हुई। कभी दलित-सवर्ण तो कभी हिन्दू-मुस्लिम कार्ड खोले गए। जिन्होंने पूरे देश को अपने आगोश में ले लिया। समय बढ़ा और इनमें भी वृद्धि होती गई। रामराज्य लाने नए ठेके पारित किये गए। जिनमें अभिव्यक्ति को रौंद दिया गया और लोकतंत्र को घायल किया गया पर फिर भी रामराज्य नहीं आया।

सरकारें त्रस्त हो गई, पुनः सलाह ली गई और इस बार कहा गया- राम राज्य जनता के सुखी होने पर आता है। फिर मुद्दा बदला। नई नीतियां शुरू हुई। नए ढांचे बनाये गए, पर जनता का दुख नहीं गया। सरकारें परेशान रहने लगी। परिजनों की सलाह पर संसदों में प्रस्ताव डाले गए और न्यायालयों में याचिकाएं। पर सभी जगह सभी ने हाथ खड़े कर दिए। सरकार को फिर तुलसीदास की याद आई। रामायण उठाकर जोर-जोर से बांची। कई चौपाईयों के अर्थ बदल दिए गए और तो और दोहों का भी इतिश्री कर दिया गया, फिर भी कुछ समझ नहीं आया। सरकार को राम राज्य का सपना अधूरा दिखने लगा। सरकारें उदास रहने लगी। संत्री-मंत्रियों की युक्तियाँ भी कोई काम न आई। पंडितों-मौलवियों से उपाय पूछे जाने लगे। पर कहीं से कोई फायदा नहीं हुआ। अंत में थक-हार कर व्यापारी मित्रों से मशविरा लिया गया। उन्होंने सरकार को नसीहत दी कि यदि काला-सफेद हो जाए तो राम राज्य आ जाएगा। इससे उन्हें भी फायदा होगा, सरकार को भी और कहने के लिए जनता को भी झुनझुना मिल जाएगा। पर सरकार के लिए यह प्रश्न ही बना रहा कि आखिर कैसे काले को सफेद बनाये। अब कौआ को कितना भी घिसा जाए वह बगुला तो हो नहीं सकता।

मित्रों ने समझाया सारी काली कमाई को सफेद दर्शा दो। हम कैसे भी कमाई करें, वह एक नम्बर की कमाई मानी जाए। सारे स्विस बैंकों को भुला दिया जाए, तब अपने आप राम राज्य आ जाएगा। सरकार को यह बात जमी, उसकी बांहे खिल उठी। काले को सफेद दर्शाने का खेल भी शुरु हो गया, जो सम्भव नहीं था उसे सम्भव करने कानून बना दिए गए। सरकार सुखी रहने लगी। व्यापारी मित्रों की नसीहत काम आई। राम राज्य पर जो हाय तौबा मची वह भी शांत हो गई। जनता भी अपना दुख भुलाकर राम राज्य का झुनझुना बजा रही है और स्तुति गा रही है।

संस्मरण

हम भी बने मुख्य वक्ता

सुरेखा शर्मा
नीति आयोग (भारत सरकार)
कार्यकारिणी सदस्या
मो०– 9801715876

बाजार से सब्जी लेकर लौटे, तो देखा मेज पर पड़े रंग-बिरंगे निमन्त्रण पत्र हमारा स्वागत करने को बेचैन हैं । श्रीमती जी के हाथ में सब्जियों का थैला पकड़ा कर जल्दी से निमन्त्रण पत्र उठाकर खोलते हुए सोचने लगे, क्या पितृपक्ष के दिनों में भी कोई शुभ कार्य होने लगे, जो इतने पत्र एक साथ ?एक पत्र खोलकर जैसे ही पढ़ने लगा तभी श्रीमती जी के मधुर वचनों ने सारा मामला एक क्षण में सुलझा दिया।वे बोलीं, 'एक एक करके क्या देखते हो, सारे के सारे तुम्हारी हिन्दी महारानी के श्राद्ध के हैं ।' 'शुभ-शुभ बोलो,ऐसा बोलना हमारी मातृभाषा का अपमान करना है, बल्कि ये तो हमारे लिए सौभाग्य की बात है कि हमें मातृभाषा की सेवा करने व सम्मानित होने का सुअवसर मिल रहा है।' हमने उनकी मोटी बुद्धि की परत हटाने की कोशिश की।

'हां...हां, मैं जानती हूं कैसा सम्मान होगा।वही फूलों का हार,एक सस्ता- सा शाल-दुशाला ज्यादा हुआ तो एक स्मृति चिह्न, जिनसे पहले ही घर भरा पड़ा है, जिनकी धूल झाड़ते-झाड़ते सारी उम्र बीत गयी।मैं कहे देती हूं इस बार कोई शाल दुपट्टा मिले, तो रास्ते में दे आना किसी भिखारी को !

'भाग्यवान ऐसा नहीं कहते।'

फिर क्या कहूं...

लाखों खर्च कर देंगे समारोहों पर लेकिन सम्मान के लिए अंगवस्त्र पता नहीं कहां से उठा लाएंगे, जो ना औढ़ने के काम आए ना बिछावन के। श्रीमती जी अपनी ही धुन में बड़बड़ाए जा रही थी। खैर... हम हिन्दी प्रेमियों के लिए तो सितम्बर माह बहुत महत्व रखता है। कहीं हिन्दी पखवाड़ा तो कहीं हिन्दी दिवस मनाया जाता है।यही तो एक दिन है। १४ सितम्बर जिस दिन अपनी मातृभाषा को स्मरण करके अपने कर्तव्य की इति श्री समझ लेते हैं।

अरे...,हम भी किस चक्कर में पड़ गये।बात हिन्दी दिवस की हो रही थी।वैसे तो हमारे देश को त्योहारों का देश ना कहकर मनाने का देश कहा जाए, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।डे मनाने की परम्परा ही कुछ ऐसी चल पड़ी है कि कोई न कोई डे मनता ही रहता है,अभी पिछले दिनों शिक्षक दिवस की धूम मची हुई थी, उससे पहले मदर्स डे,फादर्स डे,वेलन्टाइन डे, चाकलेट डे, रोज डे और भी न जाने क्या-क्या चलो कुछ भी मने हमें तो अपने 'हिन्दी दिवस' से मतलब है।

हम हिन्दी दिवस की बात कर रहे थे। जो देशभर में बहुत बरे स्तर पर मनाया जाता है, फिर हम तो ठहरे साहित्यिक नगरी से। हमारे यहाँ हर रोज एक नया साहित्यकार, कलमकार पैदा हो जाता है। जिसकी सात आठ पुस्तकें छपी... वही वरिष्ठ साहित्यकारों की कतार में खड़ा हो गया। चाहे पुस्तक ४- १६ पृष्ठ की ही क्यों न हो?लो हम फिर भटक गये अपने विषय से,आखिर रिटायर्ड हो चुके हैं ना!ध्यान तो भटकेगा ही ?

बात चल रही थी हिन्दी दिवस समारोह की।अब बीस हिन्दी सेवी संस्थाओं से निमन्त्रण मिला है,सब जगह तो उपस्थित हो नहीं सकते?आखिर यही दिन तो है जिस दिन हम हिन्दी विद्वानों की पूछ होती है।कहीं विशिष्ट अतिथि तो कहीं मुख्य अतिथि,इस बार तो मुख्य वक्ता के रूप में मंचासीन होने का आमन्त्रण भी है।

बहुत सोच विचार के पश्चात् आखिर इस निर्णय पर पहुंचे कि क्यों न अपने ज्ञान से 'युवा शक्ति आधुनिक हिन्दी संस्था' जो युवाओं द्वारा संस्थापित है, उसी का निमन्त्रण स्वीकार करके युवाओं को लाभान्वित किया जाए ।बहुत समय से बुद्धिजीवी वर्ग में अपनी गरिमामयी उपस्थिति देते आ रहे हैं। देखा जाए, तो अब युवाशक्ति को मार्गदर्शन की आवश्यकता है। सुदृढ़ व शक्तिशाली भारत बनाना है तो युवावर्ग के साथ चलना होगा। कार्यक्रम शाम चार बजे प्रारम्भ होना था,अभी विचार मन्थन कर ही रहे थे कि चलभाष की मधुर धुन सुनाई दी ।हैलो,जय हिन्दी... बोलते ही कानों में कोयल जैसे मीठे बोल सुनाई दिए, क्या आप सच्चिदानन्द शास्त्री जी बोल रहे हैं'

बिना एक भी क्षण गंवाए हमने कहा, 'हां...हां ..., हम ही बोल रहे हैं पुत्री!'

'हम पुत्री नहीं हैं, हम युवाशक्ति हिन्दी संस्था की सर्वेसर्वा यामिनी बोल रहे हैं,हमने आपको यह इन्फोर्म करने के लिए फोन किया कि शाम ठीक चार बजे हमारी गाड़ी आपको पिक करने आ जाएगी।आपका स्थान मंच पर निर्धारित किया गया है, मुख्य वक्ता के रूप में।'

'ठीक है...ठीक है...धन्यवाद , 'कहकर फोन रख दिया खुशी के मारे हमारे तो पेट में ही गुड़गुड़ होने लगी, आज पहली बार जिंदगी में वाहन सुख जो मिल रहा था। हमने श्रीमती जी को बुलाया और हिदायत दी कि हम दो घण्टे सोने जा रहे हैं, हमें ठीक चार बजे उठा देना। यह सुनकर हमारी तरफ घुरकर ऐसे देखने लगी जैसे हमसे कोई बहुत बड़ा अपराध हो गया हो।

'चार बजे तो कार्यक्रम शुरु है, आपको तो समय से पहले पहुंचना चाहिए।' श्रीमती जी बोली। 'तुम तो सठिया गयी हो, वो अंग्रेजी में क्या कहते हैं...हां...हां याद आया...आज हम वी.आई.पी.हैं,देरी से जाएंगे, तो ही लोग हमारे आगे पीछे घूमेंगे, समझी...? 'कहकर हमने चादर तानी और निद्रा देवी की गोद में जा बैठे।निद्रा देवी जी भी आज हम पर कुछ

ज्यादा ही मेहरबान थी।वो भी हमें ले जाकर स्वप्न लोक में विचरण करवाने लगी।हमने देखा कि पंडाल लोगों से खचाखच भरा पड़ा है,सुसज्जित मंच है जहां हमें विराजमान होना है, पुष्पगुच्छों से हमारा अभिनन्दन हो रहा है।हमारे प्रवेश करते ही तालियों की गड़गड़ाहट गूंज उठी।कुछ लोग फूलों की हार पहना रहे हैं। अयोजक हमारी प्रशंसा में जो कसीदे गढ़ रहा है उसकी तो अभिव्यक्ति शब्दों में हो ही नहीं सकती।तभी मंच पर बैठे -बैठे हमारी दृष्टि प्रवेश द्वार पर पड़ी।हमने देखा टैगोर जी,पंत जी, निराला जी, भारतेन्दु जी, कबीर जी और तुलसीदास जी सूरदास जी का हाथ पकड़े प्रवेश कर रहे हैं।अपने वरिष्ठ हिन्दी के स्वनाम धन्य साहित्यकारों को देखकर तन -मन रोमांचित हो उठा।हम मन- ही- मन खुश हो रहे हैं कि आज सौभाग्य से हिन्दी के दिग्गजों का सान्निध्य मिलेगा , पर ये क्या...? उन्हें प्रवेश करने से रोका क्यों जा रहा है?उन्हें सादर अन्दर लाने के लिए हम अपने स्थान से उठने लगे तो आयोजकों ने पकड़ कर बिठा दिया।पास खड़े सज्जन से पूछा, उसने जो बताया उसे सुनकर तो हमें अपनी कुर्सी ही खिसकती दिखाई देने लगी।

उसने बताया इन महानुभावों को इन्वाइट नहीं किया गया।प्रवेश द्वार पर खड़े युवक ने तुलसी जी से अपना परिचय पत्र दिखाने को कहा तो,टैगोर हैरान होकर बोले, 'अरे बालक, ,तुम इन्हें नहीं जानते? इन्होंने ही तो रामायण का अनुवाद करके रामचरितमानस लिखी है अवधी भाषा में ?'

'नहीं...हम तो रामानन्द सागर को जानते हैं ।' युवक बोला । देखिए, ये कवि टैगोर हैं, जिन्होंने राष्ट्र गान लिखा है और ये हैं सूरदास व दिनकर जी और ये हैं कबीर जी इनको तो पहचानते ही होगे इनकी कनटोपी ही इनकी पहचान है।अब हो गया हमारा परिचय।अब तो हमें अन्दर जाने दो!' निराला जी युवक को समझाते हुए बोले। देखिए, इस तरह आप बिना परिचय पत्र के अन्दर एन्टर नहीं कर सकते। तभी मंच से किसी वक्ता द्वारा दोहराई जाने वाली पंक्तियां गूंजी,-

'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल,
बिन निज भाषा ग्यान के मिटत न हिय के शूल।'

दिनकर जी बोले,'तुमने जो पंक्तियां अभी- अभी सुनी वो इन्हीं भारतेन्दु जी द्वारा लिखी गयी हैं ।चाहो तो जाकर पूछ लो।' निराला जी की दीन- हीन दशा, टैगोर की लंबी दाढ़ी,लम्बा कुरता, भारतेन्दु जी के घुंघराले केश तथा पंत जी के व्यक्तित्व को देखकर वहाँ खड़े युवा हँसने लगे।निराला जी ने पुनः प्रयास किया और बोले,'देखो बच्चो, हम सब साहित्यकार हैं, साहित्य मेले का यह टंगा कपड़ा देखकर ही हम यहाँ आ गये।
अब कम से कम अंदर तो जाने दो !'

'देखिए साहित्यकार जनाब ,ये हिन्दी सम्मान समारोह है, कोई शादी समारोह नहीं कि जो चाहे चला आए।' तभी आधुनिक परिधानों में सजी संवरी युवती आई और बोली,सभी रास्ते से हट जाएं, चीफ गेस्ट पहुंचने ही वाले हैं ।तभी युवती की नजर कबीर जी पर पड़ी और चहकती हुई बोली, क्या आप भी अन्वांइटेड हैं?
'नहीं ।।नहीं...हम साहित्यकार हैं, ,यह साहित्य उत्सव मेला देखने आ गये।हमने सोचा शायद हम सब को एक साथ देखकर आप लोग प्रसन्न होंगे। 'पंत जी अपनी मधुर वाणी में बोले।' देखिए ,यहां बुजुर्ग साहित्यकारों का कोई काम नहीं ।आप बुरा न मानिए आजकल अंग्रेजी का बोलबाला है,आज जिन कवियों व साहित्यकारों को इन्वाइट किया गया है या तो उनकी पहुंच ऊपर तक है या जो किसी पद पर आसीन हैं ।कुछ ऐसे कवि हैं जो कविता के नाम पर फुहड़ चुटकले सुना -सुना कर हंसी -ठहाके लगाकर तालियाँ बटोरते हैं और ऑडियंस का मनोरंजन करते हैं ।इस आयोजन का हिन्दी साहित्य से कुछ लेना देना नही।'

'फिर ये रंग बिरंगे कपड़े,झंडे,इतनी सजावट किसलिए ?' निराला जी दुखी होते हुए बोले। 'सब दिखावा है, ताकि हिन्दी के नाम पर कुछ खाया कमाया जा सके। 'युवती हाथ नचाते हुए बोली।तभी मंच से घोषणा हुई ,'लेडीज एंड जेन्टलमैन! आज बहुत ही खुशी का दिन है,जानते हैं क्यों? क्योंकि 'टूडे इज हिन्दी डे, हमें अपनी मदर टंग का सम्मान करना चाहिए ।अभी हमारे बीच चीफ गेस्ट आनेवाले हैं, आप सभी खड़े होकर, तालियों से उनका वेलकम करें, थैंक्स ।'
मंच पर हुई घोषणा को सुनकर दिनकर जी,निराला जी दुखी होकर एक दूसरे की ओर देखने लगे।
भारतेन्दु जी ने युवती से कहा, 'पया हमें मुख्य अतिथि से तो मिलवा ही दीजिए।'

'नहीं, आप उनसे नहीं मिल सकते, वे एक सेलीब्रेटी हैं ।' 'क्या.. .?इसका मतलब वो बहुत बडे साहित्यकार हैं?'
'जी वो बहुत बड़े गीतकार हैं ,आजकल उनके लिखे गीतों की बहुत मांग है।बच्चे -बच्चे की जुबान पर है,क्या आप लोगों ने नहीं सुने ? मुन्नी बदनाम हुई , कजरारे...कजरारे तेरे कारे -कारे नैना, तुलसीदास , सूरदास, दिनकर जी अपने कानों पर हाथ रखकर बाहर की ओर प्रस्थान करने लगे।हम मंच पर बैठे -बैठे लाल -पीले हुए जा रहे थे।गले में पड़े फूलों के हार शूल की तरह चुभ रहे थे। तभी खींचकर हारों को उतारकर फेंकते हुए हम बोले ,'बंद करो ये ढकोसला, जहां हिन्दी के नाम पर मातृभाषा व उसके साहित्यकार पुत्रों का अपमान होता हो, हम वहाँ एक क्षण भी नहीं रुक सकते।' कहते हुए हम जैसे ही मंच से उतरे तो हमारी आँख ही खुल गयी । सामने देखा पत्नी जी घबराए हुए खड़ी हैं। हमें पसीने से तर-बतर देखकर बोली,'आपकी तबीयत तो ठीक है ना ?माथे पर इतना पसीना क्यों ?' पसीना पोंछते हुए हम सोचने लगे, क्या वास्तव में हमारी हिन्दी अंग्रेजी के नीचे ऐसे तो नहीं दब जाएगी ?आने वाली पीढ़ी के लिए हिन्दी मजाक तो नही बन जाएगी...सोचते हुए कार्यक्रम में जाने के लिए तैयार होने लगे।

पुस्तक समीक्षा

दीमक : शशि कान्त 'शशि'

-डा सुरेश कान्त

शशिकांत सिंह 'शशि' के ताजा व्यंग्य-उपन्यास 'दीमक'ं पर लिखने से पहले यह बताऊँगा कि शशिकांत किस तरह सबसे अलग हैं । उनके इस उपन्यास को मैं तीन दृष्टियों से जाँचूँ-परखूँगा । अपने पिछले व्यंग्य-उपन्यास 'प्रजातंत्र के प्रेत' से वे कितना आगे बढ़ पाए, व्यंग्य-उपन्यास के रूप में इसका आकलन और हिंदी-व्यंग्य-उपन्यासों में इसका स्थान अन्यतम हैं । इस उपन्यास के केंद्र में रामपुर उच्च विद्यालय है, जो रामपुर गाँव में स्थित है। लेखक ने इसे बिहार के वैशाली जिले का एक गाँव का बताकर कथानक का कैनवास सीमित कर दिया है, वरना यह देश के किसी भी जिले के किसी भी गाँव का कोई भी विद्यालय हो सकता था। विद्यालय में हेडमास्टर हरसुख पांडे जी हैं, जो मास्टरों में लोमड़ी, बच्चों में वायरस और गाँव में पंडित के नाम से जाने जाते हैं। मास्टर भी केवल मास्टर नहीं हैं, वे नए-पुरानों में बँटे हैं। पुराने मास्टर घाघ हैं, जो पढ़ाने के सिवा सारे काम करते हैं, तो "नए वे हैं जिन्हें बिहार सरकार ने 'डिग्री लाओ नौकरी पाओ' (योजना) के तहत बहाल किया है, वेतन के नाम पर छः हजार का मानधन। काम के नाम पर वे सारे काम, जो पुराने यानी कि फुल स्केल वाले कर रहे हैं। यह अलग बात है कि नए वाले भी पुराने घाघ हैं। काम नहीं करने के दो दर्जन तरीके तो अभिमन्यु की तरह सीखकर ही धरती पर आए थे, दो दर्जन आने के पहले महीने में पुराने मास्टरों के सौजन्य से सीख गए। यहाँ बिहार से जोड़कर लेखक फिर कथा के कैनवस को सीमित करने की गलती किया है।

पुराने मास्टरों में रजनी मैडम हैं, जो या तो स्कूल आती ही नहीं, आती भी हैं तो क्लास में नहीं जातीं, लेखक के शब्दों में, "जाती ही कब हैं, कल नहीं गईं तो हंगामा हो गया।" सहनी जी हैं, जो हिंदी के अध्यापक हैं पर 'अंग्रेजी भी देख लेते हैं' और हकीकत में कुछ भी नहीं 'देखते।' लेखक के अनुसार वे "बोलने के लिए धरती पर आए ही नहीं थे और उन्हें ई. एल.और सी.एल. के अलावा किसी भी अन्य विषय पर बोलते किसी ने नहीं देखा।" वे हर वक्त अखबार पढ़ते रहते हैं और इसमें इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि अखबार नया है या पुराना। 'खेल का मास्टर' जयशंकर प्रसाद है, जो रेल की लेटलतीफी के कारण कभी समय पर स्कूल नहीं आ पाता। हेडमास्टर पांडे जी द्वारा शिकायत करने पर वह तुर्की-ब-तुर्की जवाब देता है, "आप तो जैसे नौ बजे से यहीं बैठे हैं?अभी आए होंगे हमसे दो-तीन मिनट पहले। हमने आपको रमबलिया की दुकान पर बैठे देखा ही था। आप निकले और हम चाय पीने लगे तो लेट हो गया। अब रेल हमसे पूछकर तो चलती नहीं।"

नए अध्यापकों में उपन्यास के नायक समीरकुमार उल्लेखनीय हैं, जो किसी प्राइवेट स्कूल से आए हैं, जिसका 'वायरस उनमें थोड़ा बाकी है।" वह वायरस ही उन्हें बच्चों के लिए, और प्रकारांतर से देश के लिए भी, कुछ करने पर आमादा किए रहता है। दूसरे शब्दों में, उन पर देश-सेवा का भूत चढ़ा रहता है, जिसके लिए उन्हें कदम-कदम पर मुँह की खानी पड़ती है और नकल रोकने के एक प्रसंग में तो उनकी भरपूर ठुकाई भी हो जाती है।

उपन्यास में रामपुर गाँव है, जिसके निवासी 'अपने राष्ट्रीय कर्तव्य का निर्वहन करने' में सजग हैं और वह भी कुछ इस तरह कि "उनको यह पूरा हक है कि विद्यालय के विकास और समृद्धि के अलावा अन्य किसी भी काम पर पूरा ध्यान दें।" गाँव में और कुछ भी हो, बिजली की समस्या नहीं है और वह इसलिए कि "वह पाँच साल पहले आई थी, उसके बाद से आज तक नहीं आई। आती तो दस समस्याएँ खड़ी करती। आदमी कूलर, पंखों का आदी हो जाता और बिजली के जाने पर गालियाँ देता। कोई किसी के तार काट लेता, तो परस्पर वैमनस्य बढ़ता। आज परस्पर शांति और सद्भावना कायम है। लोग मन की बात रेडियो पर ही सुन लेते हैं, तो बिजली की जरूरत क्या है?" ऊपर से तुर्रा यह कि "कागज पर यह गाँव बिजलीयुक्त है।"

ऐसे इस गाँव और विद्यालय में नाकारापन, षड्यंत्र, लूटखसोट, दमन, शोषण, उठापटक, दाँवपेच, अनास्था, अराजकता आदि की वे तमाम घटनाएँ होती हैं, जो किसी भी गाँव और विद्यालय में, इस तरह पूरे देश में हो सकती हैं, या कहिए, होती रहती हैं। पात्र इसमें खुद व्यवस्था को उसी तरह खोखला करने में संलग्न पाते हैं, जैसे दीमक लकड़ी को खोखला कर डालती है। अच्छे-भले कर्तव्यनिष्ठ अध्यापक समीरकुमार भी अंततः खुद को अन्य सबकी तरह व्यवस्था के अनुरूप ढालने को मजबूर हो जाते हैं।

एक अच्छे व्यंग्यकार की तरह लेखक के पास विसंगतियों की अच्छी पकड़ है और उन्हें उजागर करने के लिए बेहतरीन व्यंग्य-कौशल है। उपन्यास चूँकि एक विस्तृत कैनवस वाली बहुआयामी कथा ही होता है । अतः उसके लिए आवश्यक और उपयुक्त कथानक अपेक्षित होता है, जो इस उपन्यास में मौजूद है। यह उपन्यास चूँकि व्यंग्य-उपन्यास है, अतः इसमें औपन्यासिकता के निर्वाह के साथ-साथ व्यंग्यात्मकता का निर्वाह भी अपेक्षित था, जो काफी अच्छे ढंग से हुआ भी है। इसके लिए

प्रसंग-वक्रता और वर्णन में व्यंजना दोनों का बखूबी इस्तेमाल किया गया है। व्यंग्य-उपन्यास के लिए अरविंद तिवारी और हरि जोशी जैसे कुछ व्यंग्यकार व्यंग्य की तुलना में कथा-तत्त्व को आवश्यक मानते हैं, और उनके अनुसार उसमें तीस-चालीस प्रतिशत भी व्यंग्य हो, तो वह अच्छा व्यंग्य-उपन्यास हो जाता है। जबकि मेरा मत इसके विपरीत है। 'व्यंग्य-उपन्यास में कितने प्रतिशत व्यंग्य होना चाहिए?' नामक एक लेख में मैं विस्तार से स्पष्ट कर चुका हूँ कि व्यंग्य-उपन्यास में शत-प्रतिशत व्यंग्य होना चाहिए, तभी वह व्यंग्य-उपन्यास कहलाने का हकदार होगा, अन्यथा नहीं। शशिकांत सिंह का यह उपन्यास मेरे मानकों पर काफी हद तक खरा उतरता है।

उपन्यास का अंत अलबत्ता जल्दबाजी में लिखा गया है और आरोपित तथा कृत्रिम जैसा लगता है। प्रतीत होता है, जैसे लेखक को समझ न आ रहा हो कि अब क्या करूँ, इसलिए वह फटाफट उसे समेट-सा देता है। उपन्यास में प्रूफ की गलतियाँ भी बहुत हैं, हालाँकि पिछले उपन्यास से फिर भी कम हैं। पात्रों के नामों तक में गलतियाँ मिलती हैं। उदाहरण के लिए, मास्टर सहनी आगे चलकर साहनी हो जाते हैं, फिर सहनी होते हैं और फिर साहनी, और अंततः सहनी के रूप में ही स्थिर हो जाते हैं।

मुझे यह कहते हुए भी प्रसन्नता होती है कि इस उपन्यास के जरिये शशिकांत अपने पिछले उपन्यास 'प्रजातंत्र के प्रेत' से बहुत आगे बढ़े हैं। उनका यह उपन्यास हर लिहाज से उनके पिछले उपन्यास से बेहतर है। विकास की यह बहुत महत्त्वपूर्ण कसौटी है कि आज हम कल से आगे बढ़े या नहीं। कोल्हू के बैल की तरह एक ही जगह पर घूमते रहना चलने का भ्रम तो देता है, पर कहीं पहुँचाता नहीं। दुर्भाग्य से हमारे बहुत-से नए-पुराने व्यंग्यकार इस भ्रम के शिकार हैं।

अब रही यह बात कि हिंदी के अन्य व्यंग्य-उपन्यासों में यह उपन्यास कहाँ ठहरता है? मैं आपको बताना चाहूँगा कि इसे पढ़ते हुए मुझे 'राग दरबारी' की याद आती रही। अगर मैं यह कहूँ कि यह 'राग दरबारी' के छंगामल विद्यालय वाले प्रसंग का बढ़िया विस्तार है, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। तो क्या यह दूसरा 'राग दरबारी' है?नहीं, यह भी नहीं कहा जा सकता। दूसरा 'राग दरबारी' (मतलब उसके स्तर का व्यंग्य-उपन्यास) तो स्वयं श्रीलाल शुक्ल भी नहीं लिख सके थे, किसी अन्य की बात तो छोड़ ही दीजिए। लेकिन इस उपन्यास को पढ़ने के बाद मैं दो बातें दावे से कह सकता हूँ । एक शिक्षा-जगत पर अशोक शुक्ल के 'प्रोफेसर पुराण' के बाद यह दूसरा श्रेष्ठ व्यंग्य-उपन्यास है और ग्रामीण शिक्षा के विषय पर तो पहला ही है, दूसरे, 'राग दरबारी' के स्तर तक या उसके भी पार जाने का जो दो व्यंग्यकार सामर्थ्य रखते हैं, शशिकांत उनमें से एक हैं। वे पहुँच पाते हैं या नहीं, यह समय बताएगा। इसके लिए कड़े अनुशासन और सजग चेतना की आवश्यकता है। जिस तरह कोई पनिहारिन सखी-सहेलियों से बातचीत, हँसी-मजाक और अन्य क्रियाकलाप करते हुए भी हर क्षण अपने सिर पर रखे पानी के घड़े के प्रति सचेत रहती है और एक बेहतरीन संतुलन कायम रखते हुए पानी छलकने नहीं देती, लक्ष्य के प्रति वैसी ही उत्कृष्ट सजगता मंजिल पर पहुँचा पाती है। वरना, तो यह रास्ता बेहद फिसलनभरा है, कभी भी, किसी भी जगह आदमी गिरकर मुँह की खा सकता है। आत्ममुग्धता इस मार्ग पर सबसे बड़ी शत्रु है, जिससे प्रतिपल सावधान रहना आवश्यक है। यह बात मैं अकसर खुद से कहता हूँ, आज शशिकांत जी से कह रहा हूँ और उनसे कहते हुए भी असल में खुद से ही कह रहा हूँ।

ऐसा नहीं है कि व्यंग्यकार इस डिमांड और सप्लाई के गणित से अनभिज्ञ है । हर रचनाकार अपनी कृति को श्रेष्ठ और रूचिकर बनाने का पूरा यत्न करता है । रचना को अंतिम रूप देते समय कई बार उसे लगता है कि बात जम नहीं रही है । कहीं कुछ छूट सा गया है । रचना में अधूरापन लगता है । इस "प्रिमेच्योर" व्यंग्य डिलेवरी के पीछे भी कई वजहें हैं । मसलन शब्द सीमा के बंधन में व्यंग्य की जल्दी समेटा-समेटी करनी पड़ती है । किसी तात्कालिक घटना पर आनन-फानन में व्यंग्य लिख लिया , अगले दिन न छपे तो बासी हो जायेगा, इस चक्कर में रचना के साथ न्याय नहीं हो पाता है । इन सब विवशताओं और रचना की कमजोरियों के बावजूद लेखक इस बात से आश्वस्त रहता है कि उसकी रचना कहीं न कहीं तो प्रकाशित हो ही जायेगी । इस निश्चिंतता के चलते, वो विचार जहां से व्यंग्यकार को तंदुरुस्त व्यंग्य के जन्म लेने की प्रबल संभावना नजर आ रही थी, विचार को विस्तार देते-देते, शिल्प का तानाबाना बुनते-बुनते, अंत में क्षीण हो जाती है । तब लगता है कि एक सशक्त, टिकाऊ विचार के अभाव में रचना की संकल्पना कितनी कठिन होती है । किसी हेडलाइन को पढ़कर, किसी वक्तव्य को सुनकर, किसी चटपटी खबर को सुनकर, मित्र मंडली में किसी चर्चा से प्रभावित हो, रचनाकार झट से कलम लेकर व्यंग्य लिखने के लिए टूट पड़ता है ।

विचार पर जितना मनन, चिंतन होगा, रचना अपने को अभिव्यक्त करने में उतनी ही सक्षम होगी । किसी घटना पर, किसी मसले पर क्षण में पैदा हुए विचार पानी के बुलबुले के मानिंद है । जिस तीव्रता से विषय जेहन में उठता है, उतनी ही तेज गति से वो लुप्त भी हो जाता है । विषय गंभीर होगा तो रचना विभिन्न आयामों के साथ लम्बी दूरी तय करने में सक्षम होगी । पाठक भी रचना के साथ कदमताल करेगा । परंतु यदि विचार का आधार ठोस नहीं होगा तो आप लाख शिल्पकारी कर लें, रचना भरभरा कर गिर जायेगी । व्यंग्य, व्यंग्य न होकर सपाट बयानी हो जाता है । जिसकी चपेट में आने के आरोप अक्सर व्यंग्यकारों पर लगते रहते हैं । व्यंग्य किसी फिल्म की कमजोर पटकथा की तरह नहीं है जिसे अच्छे निर्देशन से या अभिनेता के दमदार अभिनय के बूते पर हिट किया जा सके । "कंटेंट" का समर्थ होना जरूरी है ।

आ बैल मुझे मार

सुशील यादव

बैल को, शायद ही किसी ने आक्रामक होते देखा हो ?शायद इसी कारण इस नीरीह प्राणी को हर कोई लड़ने के लिए , दावत देने की, हिमाकत और हिम्मत कर लेता है..., चौलेज दे डालता है...., आ ...मार ।

सांड को लड़ने के लिए ललकारने वालों का इतिहास, न समाज में और न ही राजनीति में कहीं मिलता है । इस विषय में शोध करने वाले व्यर्थ माथा-पच्ची न करे,वरना आपके गाइड सालो-साल आपको, सब्जी-भाजी लाने के लिए थैला टिकाते रहेगा ,अंत में मिलेगा कुछ नहीं ।

खैर, सांड टाइप शख्शियत, जो बिना कहे लड़ने-लडाने के लिए हरदम तैयार रहता है ,लोग उससे बच के निकलने में ही बुद्धिमानी समझते हैं ।

सांड़ से कितना भी बचना चाहो, तो भी वो आपके सायकल,मोटर सायकल,स्कूटर,गाड़ी के सामने आम चौराहे पर खड़ा हो जाता है । दम है तो निकल के देख ?

गाहे-बगाहे, बिना कारण आफत को न्योता देना, "आ बैल मुझे मार" के तार्किक मायने कहे जाते हैं । मै कुछ लोगो को करीब से जानता हूँ ,उनके दिमाग में 'बैल से नूरा कुश्ती' का कीड़ा कुलबुलाते रहता है ।

बैल को पता नहीं किन कारणों से हमने राष्ट्रीय स्तर पर सजग 'प्राणी' होने की मान्यता नहीं दी ?हांलाकि उससे हल जुतावाया ,गाड़ी में भर-भर के सामान खिचवाया ,मगर जब श्रेय देने की बात हुई तो हम अच्छे मौसम और उत्तम बीज की चर्चा करके रुक गए । ये कभी नहीं कहा कि "दो जोड़ी बैलो" ने इज्जत रखने में अपना अहम् रोल निभाया ।

बैलों ने भी कभी इंसानो से, अपनी उपेक्षा की शिकायत नहीं की । उन्हें कभी किसी बात पे वाहवाही लूटने ,अपनी प्रशंसा सुनने का सरोकार नहीं रहा । वे निरपेक्ष बने रहे । उनके चेहरों में शिकन भी देखने को नहीं मिला कि कैसे मालिक से पाला पड़ा है ?यहाँ तक कि ,उनके हिस्से का चारा खाने वालों के खिलाप भी वे निरपेक्ष बने रहे । वे अमीर-गरीब,ऊँचे-नाटे ,सभी मालिको के वफादार रहे । नियत समय पर खेत जोत देने और गोबर देने मे उनकी दिनचर्या के अनिवार्य क्षणों में कोई तब्दीली नहीं हुई । कितनी भी परिस्थतियाँ बदली ,उन्हें कितनी भी प्रतारणायें मिली ,उनको दल बदलते कभी देखा ही नही गया ।

मैंने बैलो में, श्रंगार की अनुभूति का आनन्द लेते, सिर्फ प्रेमचन्द जी की कहानी 'हीरा-मोती' में महसूस किया । वैसे सजे-सजाये बैल फिर कभी सुने-दिखे नहीं ।

बैल जोडी के निशान को लेकर एक पार्टी का बरसों राज चला । सचमुच में वे दिन बैलो की तरह निश्चिन्त,निर्विवाद थे द्यमहंगाई के मुह खुले न थे। द्यकालाबाजारी ,घुसखोरी भ्रस्टाचार पर नथे हुए बैलो की तरह लगाम लगे थे ।

बैल को बैल की तरह देखने की प्रवृत्ति में एक अलग भाव तब उत्पन्न होता है, जब हम शिवालय जाते हैं, अगाध श्रद्धा उमड़ती है। वहां के 'नंदी' को बैल जैसा कोई कह नहीं पाता, लगभग सभी भक्तों को खाते - पीते मस्त 'सांड' के माफिक दिखता जो है ।

आज की पीढ़ी को कोल्हू के बैल की कथा सुनाने व महसूस कराने में शायद हम कामयाब न हों मगर हमने अपनी आंखों से कोल्हू के बैल को 'तिल की घानी' में घूमते हुए देखा है । पांच कंडील, सदर- बाजार जाने के रास्ते एक खुफिया किस्म का मकान आता था ,तेल से बजबजाता एक अब-तब टूटने लायक फाटक ,एक मिली-कुचौली सी साड़ी में लिपटी हुई बुजुर्ग सी औरत ,एक तेल पेरने की घानी, और नथुनों में समा जाने वाली तिल के तेल की गंध बहुत दूर से पता चल जाता था कि कहीं तेल निकल रहा है । उस जमाने का समझो वो अटोमेटिक मशीन था ,एक बार तिल डाल दो ,बैल चक्कर पे चक्कर मार के तेल निकालता रहेगा । सुबह-दोपहर-शाम,सर्दी-गर्मी बरसात ,आप सुबह दातून करते वक्त, या रात शो पिक्चर से लौटते समय, कभी भी देख लो, बैल का अनवरत चक्कर चलते रहता था ।

बैल के नाम पर कर्ज लेने वाले किसान आजकल नदारद से हो गए । इन दिनों कभी आपने सूना है कि, किसान अपनी पत्नी से गंभीर मंत्रणा कर रहा हो कि मंगलू की अम्मा ,सोच रहा हूँ ,इस साल एक जोड़ी बैल खरीद लेते ?खेत पिछले कई सालों से ठीक से जुते ही नहीं,फसलें बिगड़ रही हैं ।

इन संवादों के पीछे मंगलू की अम्मा को, भ्रम यूँ होने लग जाता है कि उनके पति को भूत- प्रेतों का साया तो नहीं लग गया है । वे चुड़ैल के चक्कर में तो नहीं फंस गए कहीं ?आज बैल खरीदने की बाध्यता या मजबूरी कहाँ रह गई ?

कहाँ तो एक रूपये-दो रूपये में मजे से चांवल-गेहूं मिल रहे हैं ?क्या करेंगे बैल जोड़ी लेकर ?जगह भी कहाँ है इनको रखने की?नौकर कहाँ है जो देख -रेख करे ?पत्थर ,सीमेंट या टाइल्स बिछे घरों को अब गोबर से लीपता कौन है?

अब जब टी. वी. , फ्रिज, मोबाइल मकान के नाम पर आधा गाँव लोन उठा रहा हो , बैलो के नाम पर लोन की कोई सोचे तो लोग पागल ही कहेंगे ना ?

फिल्मो से भी ये सब्जेक्ट कब का उठ गया है । अब कोई सुखी लाला ,'राधा रानी के बैलों को' छुड़ाने के पीछे, हाथ धोकर पड़े नहीं मिलता । गरीब प्रोडूसर जो सौ - दो सौ करोड़,बिना बैल डाले , मेहनत से कमा रहे है ,अगर बैल-नुमा एक सीन डाल दें तो फिल्म अगले दिन ही फ्लाप हो जाए ।

मुझसे अक्सर यह पूछा जाता है कि ,शहरों में अब बैल होते नहीं ,कोई भला किससे कहे कि आ बैल मुझे मार ?

मैं पूछने वालो की बुद्धि पर तरस खा जाने वाली निगाह से देखता हूँ द्यइस निगाह से देखने का मतलब ये भी होता है, कि मुझे आज के जमाने के,

दिमागी तौर से तंग लोगो पर हैरानी ,कोफ्त,या गुस्से का मिला-जुला भाव आ रहा होता है । हर शाख पे उल्लू बैठा है की तर्ज पर ,यहाँ हर गली में दो पैरों वाले ,पते -लिखे ,अपढ ,गंवार ,ढीठ ,जिद्दी ,अकडू ,येडा , कोल्हू के बैल बैठे हैं, घूम रहे हैं, तुझे दिखाई नहीं देता ?

राजनीति वाले, 'बैलो' को यूँ बुलाते हैं ,धारा १४४ लगी हो, तोड़ो ,तो आचार संहिता है, तो उलंघन मत करो ।

किसी ने अपने दल की जरा तारीफ की, तो उसका पिछला इतिहास ढूढ कर बखिया उधेड़ो ।

भाई भतीजा ,माँ-बहन की तह तक जा कर मीडिया के सामने परोस के रख दो जनता मायने निकालते रहेगी ।

जनता तुम्हारे वादे पर एतबार करके, तुम्हें राज करने भेजती है , तुम जनता को तंग करने लग जाते हो ?

अपनी नीयत न सम्हाल सकने वाले, अरबों कमाने वाले बाबा , "आ बैल की गुहार" बुढ़ापे में लगा बैठते हैं ?

लालच पे लगाम न रखने वाले ,छोटे-छोटे जोखिम उठाने वाले, सैकड़ों लोग हैं जो अकारण ही "बैल के गले की घंटी बनने" का नित प्रयास करते हैं ।

हमारी जनता 'प्रगति' के 'मिल्खा सिंग' के पीछे भागने की जिद किये रहती है ।

भागो मगर इसका भी एक कायदा है । अर्थ-हीन मत भागो,आगे लक्ष्य का कहीं न कहीं 'मैडल' अवश्य हो । उस रफ्तार को अगर पाना है तो मेहनत -मशक्कत-तैय्यारी- सोच तो रहनी चाहिए न ?

अपना मतदान अवश्य करें,गंभीरता-गहराई से करें, भूले से भी किसी बैल को दावत न भेजें कि आ मार ....

कविता

डॉ० गिरिजा शंकर मोदी
शब्द–सदन
सिकन्दरपुर भागलपुर
मो०– 9934095639

डंडे की संस्कृति

देश बीमार है विश्व विद्यालय में,
देश बीमार है अस्पताल में,
देश बीमार है चौराहे पर,
और तुम एक डॉक्टर न देकर
पुलिस की जमात दे रहे हो,
निराली चाल है तुम्हारी
तुम दुआ न देकर डंडे दे रहे हो
देखता हूँ देश को तुम
लाईलाज कर दोगे

आवाज गुंजती रहेगी

तुम मुझे खत्म कर दोगे
पर मेरी अवाज न मिटा पाओगे
वह गूंजती ही रहेगी
क्योंकि वह मरती नहीं
और फिर मेरे पीछे मेरा विचार खड़ा
पैदा करता रहेगा
मेरे ही जैसा एक दूसरा बागी
क्योंकि तुम वह विचार
जो आदमी का खून और पसीना है
न मिटा पाओगे
और तब एक कारवाँ के सामने
तुम अकेले के अकेले रह जाओगे
क्योंकि तुम्हारा नपुंसक विचार
जो मात्र एक राक्षस है
कुछ पैदा न कर पायेगा

खबर

इस देश के लोकतंत्र की
फिर खबर है कि
संवेदनाओं के एक और तंत्र
गौरी लंकेश की हत्या कर दी गई,

कुलकर्णी, दाभोलकर
और पनसारे की कड़ी में,

एक साहसिक आवाज
इस देश में फिर
सुरक्षित नहीं रह पाई
होने को जन की आवाज,
और तो और
इन हत्याओं पर जश्न भी मने
बेरोकटोक ,

यहाँ तो गाँधी की हत्या पर भी
बाँटी गई थी मिठाइयाँ
स्तब्ध रह गई दुनियाँ के
सूने परिवेश में ,

यहाँ और भी खबरे हैं कि
यहाँ के अस्पताल में
उनचास बच्चों ने तड़प कर
दम तोड़ दिया

आंक्सीजन के अभाव में,
और एक मासूम बच्चा प्रदुम्न की हत्या
गला रेत, कर दी गई
उनके ही विद्यालय के वाश रूम में
और एक ख्यात चिकित्सक
डूब कर मर गया सड़क के नाले में,

और खबर यह भी है कि
अब एक ही निर्भया नहीं
कई निर्भया रोज मारी जाती है
बलात्कार कें बाद इस देश में ,

पर एक दिन जरूर
इस देश की मूक रही जनता
संसद तक उमड़
उसे सवालों के घेरे में ला
कुछ कर लेगी निर्णायक ।

कहानी

चुनौती

लाल माहेश्वरी शंकर
पूर्व जिला शिक्षा पदाधिकारी
भीलवाड़ा (राजस्थान)
मो. ६२१४५८१६१०

गाँव का ग्वाला दूधवाला किशोर परचूनी दुकान वाले सेठजी चक्की वाला मुनीम दुर्गा मंदिर का पुजारी स्कूल का विद्यार्थी पानी लाने वाली पनिहारिन बिजली वाले बाबू कारखाने का मजदूर मस्जिद का मौलवी अखबार वाला कारिंदा चौपाल का चौकीदार बस वाला कंडक्टर इन सभी के कान विद्यालय के घंटो पर लगे रहते हैं जो रात को बजते हैं आप पूछेंगे नहीं कि यह घंटो वाली राम कहानी क्या हैं?तो सुनिए! राम लाल जी स्थानीय विद्यालय में चपरासी के पद पर तैनात है।बरसौं से इसी स्कूल में विराजमान है। इन्हें दिन की ड्यूटी करने में अधिक आनंद का अनुभव होता है। यूँ आदमी बड़े काम के है, किन्तु डाक लेने भेजो तो घर की झाड़ू-बुहाड़ू करके लौटेंगे और डाक डालने की कहो तो अपनी गायों को चारा दाना-पानी पिलाकर हीं लौटेंगे।भले ही इस काम में पूरा घंटा ही क्यों न लग जाय। व्यवहार कुशल इतने की इन्हें कोई कुछ भी काम बता दो, तो उसे ईमानदारी से पूरा करके ही लौटेंगे चाहे आधे धंटे में ही पूरा करे।

पूरा समय सही ड्यूटी नही दे पाते इसलिए एक दिन मैंने उन्हें कह दिया ,रामू भैया! अगले महीने से आपको रात में ही डयूटी देनी होगी ।क्योंकि आपके दिन बाले कार्य ड्यूटी रहते पूरे नहीं हो पाते और अगले महीने की पहली तारीख ही से रामलालजी रात की ड्यूटी पर चढ़ गये। पहले नानुकुर अवश्य किया था, किन्तु समझाने पर समझ गए। उन्हें आदेशित किया गया था की वे सायं छः बजे से प्रातः छः बजे तक ड्यूटी देंगे। दो चार दिन तो वे रात की ड्यूटी बराबर करते रहे, किन्तु उनके चहेतो ने उनके कान भरना शुरू कर दिया, कि तुम्हारी ड्यूटी तो बारह घंटो की हो जाती है, जब कि आठ घंटा ही ड्यूटी देना होता हैं। मेरे पास यह बात आई तो मैंने उन्हें रात्रि दस बजे से प्रातः छः तक की ड्यूटी का समय बता दिया।

राम जी खुश! वे ड्यूटी पर आते, कमरों को देख लेते, परिसर में एक चक्कर लगा लेते और बत्ती जला कर सो जाते। एक दिन अचानक ही स्कूल जाकर मैंने देखा तो ग्यारह बजे ही गहरी नींद में खर्राटे भर रहे हैं। मैंने उन्हें जगाया और पाबंद किया कि रात में दस बजे से सुबह छः बजे तक हर एक घंटे बाद जिस समय जितने बजे हैं, उतने ही घंटे लगाओगे। चूक होने पर मान लिया जाएगा कि आप ड्यूटी पर नहीं हैं। थोड़ा आक्रोश और तनाव के भाव देखकर मैंने उन्हें समझाया। तुमने प्रथम श्रेणी से बी. ए. पास किया है, तुम चाहो तो ड्यूटी की इस व्यवस्था का लाभ उठाकर किसी प्रतियोगी परीक्षा की तैयारी कर सकते हो। परीक्षा पास कर लेने पर तुम किसी प्रशासनिक सेवा में भी पहुँच सकते हो। तुम्हें अपनी योग्यता पर भरोसा होना चाहिये, सदा याद रखो "सफलता का एक दरवाजा बंद होता है, तो दूसरा खुल जाता है। लेकिन हम बंद दरवाजे की ओर देखते हैं और उस दरवाजे को देखते ही नहीं जो हमारे लिए खुला है।" मैं तुम्हारा पूरा सहयोग करूँगा। शिक्षक साथी भी तुम्हारी सहायता हेतु तत्पर हैं। अपना लक्ष्य निर्धारित कर आगे बढ़ो। तुम्हारे घंटो की आवाज से गाँव वालों की दिनचर्या भी नियमित हो जाएगी जो एक पुण्य का काम होगा। शुक्र है खुदा का की वे मेरी बात मान गए और तभी से रात में घंटे बजते रहे।

मृदुभाषी, वाक्पटु, विद्यार्थियों के चहेते और अभिभावकों के प्रिय राम जी कभी कभी तो अध्यापक भी बन जाते थे। गाना बजाना इनका प्रारंभिक शौक रहा है। प्रार्थना सभा हो, चाहे सांस्कृतिक कार्यक्रम पूरे मनोयोग से भागीदारी का निर्वहन करते हैं। गणित और विज्ञान विषय तो इस कुशलता से पढ़ाएंगे कि विद्यार्थी भुलाए नहीं भूल सकता। नाना के घर रहकर बारहवीं कक्षा विज्ञान गणित विषय लेकर ही तो सर्वाधिक अंकों से उत्तीर्ण की है। जिले में प्रथम स्थान रहने से इन्हें विशेष सम्मान मिला था। प्रथम श्रेणी से बी.ए. पास करने के बाद भी सही नौकरी नहीं लग पायी, तभी तो चपरासी की नौकरी से ही संतोष करना पड़ा। विद्यालय की सुरक्षा, छात्राओं का सार- संभाल, विद्यालय वाटिका का रख-रखाव, साफ-सफाई, अवकाश के समय कमजोर छात्रों को पढ़ाना,पढ़ने योग्य बालकों को विद्यालय में प्रवेश दिलाना तथा अभिभावकों से संपर्क करते रहना उनके दिनचर्या के अंग रहे हैं। आदमी इतना तेज दिमाग का है कि इनसे आप हिसाब किताब करवा लें, सभी तरह के वाहन चलवा लें, हरफनमौला हैं ये जनाब । बदकिस्मती रही कि दो बार बाबू बनने का प्रयास किया किन्तु असाध्य बीमारी ने मंजिल नहीं पहुँचने दिया।

इन दिनों विद्याालय में खेलकुद प्रतियोगिताओं का आयोजन था। विद्यालय के खेल मैदान पर पड़ौसी रामधन चौधरी ने अतिक्रमण कर खेल मैदान को सिकोड़ दिया। रामलाल ने चौधरी को खुब खरी-खोटी सुनाई। अपने ही गाँव के बच्चों के खेलने के स्थान को हथिया लेना कानूनन अपराध है। गाँव वालों तक बात पहुँचाई, तो भी चौधरी की दबंगई के सामने कोई कुछ नहीं बोल सका। स्कूल वालों ने प्रयास किया, किन्तु सफलता नहीं मिली। एक दिन रामलाल स्वयं फावड़ा लेकर चौधरी की उस दीवार को तोड़ने लगा, तो आपस में हाथापाई हो गई । चौधरी की उपर तक पहुँच होने के कारण कोई कुछ नहीं बोल सका।रामलाल ने चौधरी को खूब खरी-खोटी सुनाई तो चौधरी ने कहा । आप कोई कलेक्टर हैं क्या ?जो आपका हुकुम मान लिया जाये।हैं तो आप एक स्कूल चपरासी ही । अपनी औकात में रहना सीखो।हमारी हीं बिल्ली और हमसे ही

म्याऊँ।चपरासी हो,चपरासी बने रहो यह राम जी को बाण की तरह चुभ गई और उसी समय दृढ़ संकल्प कर लिया । बेटा ! अब तो कल्क्टर बनकर ही दिखाउँगा।

रामजी दूसरे दिन विद्यालय में आये, तो उनकी भावभंगिमा में बदलाव था। कहने लगे सर! अब तो मुझे प्रशासनिक सेवा में ही लगना है। उन्होने बारह महिने का अवकाश लिया।शहर में जाकर आई.ए.एस.की तैयारी में लग गये। प्रशासनिक अधिकारियों, वकील मित्रों और साथियों से संपर्क साधते हुए अपने कार्य को पूरा करने में जी जान लगा दी साल भर बाद पुनः ड्यूटी चढ़ गये। रात-रात भर योजनाबद्ध तरीके से परीक्षा की तैयारी करते रहे। कभी-कभी निराश भी हो जाते, और ठहर जाते तो मैं उन्हें कहता भैया ! जब तक आत्मविश्वास रूपी सेनापति आगे नहीं बढ़ता, तब तक सब शक्तियाँ मुँह बाहें उसका मुँह ताकती रहती है। आसमा को छूना है तो होंसलें बुलन्द रखना होगा। मुश्किलें तो वह औजार है जिनसे ईश्वर हमें बेहतर कामों के लिये तैयार करते हे।

दोस्त! जहाँ हिम्मत समाप्त होती है वहीं हार की शुरूआत होती है।धैर्य रख और कदम आगे बढ़ाओ । ध्यान रखो ,जीत वे जाते हैं जिन्हें विश्वास होता कि वे जीत सकते है। निराशावादी हर अवसर में कठिनाई देखता है, जबकि आशावादी हर कठिनाई में अवसर देखता है। याद रखो, लक्ष्य की प्राप्ति के लिये कर्म, विचार और भावनाओं का ध्रुवीकरण करना चाहिये । दृढ़ ईच्छा शक्ति, लगन, समर्पण और परिश्रमके आगे मुश्किलें सदैव हारती हैं। ईश्वर उन्हीं की सहायता करता है जो स्वयं अपनी सहायता करता हैं। इसलिये अपनी मंजील प्राप्त करने के लिये दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ो और सफलता प्राप्त करो।

मेरी इस सलाह के बाद रामजी दुगुने उत्साह के साथ परीक्षा तैयारी में जुट गये। और रामलाल जी की मेहनत सफल हुई ।पहले ही प्रयास में आइ. ए. ए.एस. की परीक्षा उर्त्तीण कर ली। कल्क्टर पद की मुराद पूरी हुई। प्रशिक्षण हुआ। कई प्रशासनिक पदों का अनुभव लिया और समीपस्थ जिले में ही पद स्थापना हो गई। विद्यालय में खुशी की लहर दौड़ गई। मिठाईयाँ बाँटी गई। उस समय अपने ही जिले में जिलाधीश का पद रिक्त था। अतः रामजी को ही इस जिले का कार्यभार सौंपा गया।

आज कल्क्टर रामजी के मन मश्तिष्क में अपने पुराने विद्यालय की यादें हृदय पटल पर धरना देनी लगी । वही रात के घण्टे ,प्रार्थना सभा,अतिरिक्त कक्षायें ,गरीब किसान का वह छोकड़ा,रात की चौकिदारी और चौधरी वह कथन कि तुम कल्क्टर हो क्या ?आदि दृश्य एक एक करके उसकी विचार तरंगो को उद्धेलित करने लगे। अब तो कल्क्टर साहब ने अधिकार पूर्वक अतिक्रमन हटाने का आदेश संबंधित क्षेत्रीय अधिकारी को थमाकर तत्काल कार्यवाही का फरमान जारी कर दिया । आदेश का पालना हुआ और गाँव वालों के सामने ही चौधरी द्वारा विद्यालय के खेल के मैंदान में बनायी गई दीवार को ध्वश्त कर दिया गया और चौधरी देखता रहा।

आज पूजा पाठ से निवृत हो अखबार देख रहा था, तभी एक सफेद रंग की कार घर के बाहर आकर रूक गई। कलेक्टर रामजी कार से उतरे । दौड़ कर मेरे पास आये । चरण स्पर्श किये। मैने उन्हें अपनी छाती से लगाया तो उनकी आँखो में आँसू छलक गयें।कहने लगे गुरूजी ! मैं आज जो कुछ भी बना हूँ यह सब आप ही की कृपा का फल है।आप ने मुझे प्रेरणा नहीं दी होती, तो इस मंजील तक पहुँचना मेरे लिये असंभव था। तब मैने कहा रामलालजी! यह सब तो आप ही के परिश्रम का प्रतिफल है। कागज अपनी किस्मत से उड़ती है मगर पतंग अपनी काबिलियत से। किस्मत साथ दे या ना दे, काबिलियत जरूर साथ देती है। साथ ही जलपान किया और मुझे साथ लेकर गाँव वालों द्वारा आयोजित स्वागत समारोह में आ गये।

लघुकथा

दवा

सुनील गज्जाणी

जैसे-जैसे रात गहराती उस बुड्ढ़े मरीज के खर्राटे मानो परवान पर होते। सर्द रातो में वे खर्राटे सन्नाटो का बींध से रहे होते थे। वार्ड के अन्य मरीज रात को शुरू-शुरू में तो सिर्फ बडबाडते थे जब वो बुड्ढ़ा वार्ड में भर्ती हुआ था, तगर जैसे-जैसे कुछ दिन बीते तो उसे कोसने लगे, उसके परिजनो से लड़ने पर उतारू हो जाते कि बुड्ढ़े के कारण हमारे नीद में खलल पैदा होती है। मगर परजिन बेबस थे, खर्राटे लेने से कौन किसे रोक सकता है। जब कि वो बुड्ढ़ा कितने दिन का मेहमान है, पता नहीं! कभी उसकी तबीयत सही होती तो कभी बिगड़ जाती।

बुड्ढ़े के सबसे पास का मरीज एक लड़की थी, जो कभी कुछ नहीं बोलती थी उसके खर्राटो के बारे में वा केवल खर्राटे सुन अपनी आंखें बंद किये बुदबुदाती रहती और बुदबुदाती-बुदबुदाती जाने कब से जाती पता नही!

कुछ दिन बाद वो बुड्ढ़ा चल बसा! उस रात वार्ड के मरीजों ने चैन कि नीद ली, मगर वा लड़की उदास थी, उस रात देर तक जागे रही, परिजन भी "बेटी सो जाओ, बहुत रात हो चुकी है अब, से जाओ ना" कह-कह कर थक गये थे। मगर लड़की टकटकी लगाए बुड्ढ़े वाले पलंग का देखती हुई बोली "माँ मेरे लिए वो खर्राटे किसी लोरी से कम नहीं थे, मैं उन खर्राटों को गिनते-गिनते कब नींद की आगोश में चली जाती, पता नहीं लगता था! माँ! अब फिर से नींद की दवाई दो न, जो बुड्ढ़े बाबा के आने से पहले डॉ मुझे दिया करते थे, वरना इस ऑपरेशन के दर्द से आज नींद नहीं आएगी।

आलेख

तेरे आने से पहले तेरे जाने के बाद

विनय कुमार पाठक
ग्रीन सिटी, अरगोड़ा राँची
9001895412

ये जो बड़े–बड़े नेता हैं, खास कर जो उच्च पदों पर विराजमान होते हैं, उन्हें जनता जितना भी ग्लोबल वार्मिंग के प्रभाव से और राम की गंगा मैली होने के बाद, जैसा भी, जहाँ भी उपलब्ध है, पानी पी–पी कर कोसती रहती है । उन्हें देश पर बोझ समझती है और आम जनता के लिए परेशानी का सबब मानती है तथा देश की दुर्दशा के लिए जिम्मेवार मानती है, पर ये कितने महत्वपूर्ण होते हैं, देश के लिए, प्रदेश के लिए, समाज के लिए और राष्ट्र के लिए बल्कि पूरे विश्व के लिए, इसे एक छोटी घटना से समझा जा सकता है ।

यह छोटी सी घटना यूं है कि माननीय को लाखों बाद स्थित एक शैक्षणिक संस्था की ओर से आमंत्रित किया गया दीक्षांत समारोह में मुख्य अतिथि बनने के लिए । माननीय ने उस संस्था को कृतार्थ किया, उसका निमंत्रण स्वीकार कर के माननीयगण इस तरह के निमंत्रण बड़ी खुशी–खुशी स्वीकार करते हैं । क्योंकि वे इससे ज्यादा किसी लायक नहीं होत, कई बार वे रबर स्टाम्प को खुद से ज्यादा उपयोगी पाते हैं और उसे दिखाने के लिए की उनका भी कुछ उपयोग है। बगैर किसी आपत्ति के ऐसे निमंत्रण को स्वीकार करते हैं। आखिर कुछ तो काम कर लें, ये हजरतगण खुद को आश्वासन दे पाएंगे कि वे भी कुछ काम के लायक हैं ।

लाखोबाद जाने के लिए निर्माणनगर एयरपोर्ट पर उतरना था और वहाँ से करीब नब्बे किलो मीटर सड़क के रास्ते जाना था । वैसे इस तरह के माननीयगणों के लिए सड़क से यात्रा करना हमारे देश की परंपरा के अनुसार शोभनीय नहीं है, पर लाचारी थी क्योंकि लाखोबाद में विमान उतारने की व्यवस्था नहीं थी । अतः अपने प्रतिष्ठा के विपरीत उन्हें सड़क के रास्ते जाना पड़ रहा था ।

निर्धारित समय पर माननीय निर्माणनगर एयरपोर्ट पहुँचे । स्वाभाविक था कि निर्माणनगर में भी कुछ उद्घाटन–सुद्घाटन, कुछ वृक्षारोपण, और कुछ डोनेशन–वोनेशन का कार्यक्रम बनता किसी भवन, परियोजना के उदघाटन के वक्त, किसी संस्था को डोनेशन में गाड़ी, एंबुलेंस या अन्य कोई उपकरण आदि देते वक्त इनके चेहरे पर वह भाव होता है मानो दानवीर कर्ण की संतान हो। यह बात अलग है कि खुद सबसिडी वाला खाना खा कर और मुफ्त में भांति–भांति की सुविधाएँ पा कर एक परोपजीवी की जिंदगी जीते हैं। वृक्षारोपण इस भाव से करते हैं मानो पर्यावरण को शुद्ध करने का बीड़ा लिया है। उन्होंने जबकि चारित्रिक प्रदुषण उनके द्वारा इतना होता है कि कब कौन मोहतरमा भंवर में फंस जाए, कहा नहीं जा सकता ।

जहाँ–जहाँ ये कार्यक्रम होने थे उस स्थान पर जाने के सड़कों को चमाचम बना दिया गया । सड़क से अतिक्रमण बिलकुल हटा दिए । जनता खुश हुई, उन्हें लगा, वो एकाएक किसी दूसरे देश के नागरिक हो गए हैं, जहाँ सुव्यवस्था है। अमन–चैन हैं, चमचमाती सड़कें हैं, सड़क किनारे हरे–भरे वृक्ष हैं, यातायात नियम है यह बात अलग है कि जिस दिन माननीय निर्माणनगर एयरपोर्ट से उतर कर जगह उद्घाटनादि के लिए गए, उस दिन उन रास्तों पर आम आदमी का चलना फिरना घंटे दो घंटे के लिए निषिद्ध हो गया। कितनों के महत्वपूर्ण कार्य लंबित हो गए या स्थगित हो गए ।

निर्माणनगर से लाखोबाद तक के पूरे रास्ते की मरम्मत करा दी गई । ऐसा लगता था मानो काली सड़क कील–मुहाँसे हटाने, त्वचा के रूखेपन दूर करने व सुंदर बनाने वाली क्रीम लगा कर लेटी हुई हैं । हरे–भरे पौधें में बिछा दिए गए । ऐसा लगा मानो शेरशाह ने स्वयं आ कर पौधे लगा दिये हों, सड़क के किनारे ।

हमारे इंजीनियर एवं ठेकेदारों की कार्यकुशलता का पूरा विश्व कायल हो जाए यदि उनकी सटीक गणना और कार्यशैली को जान पाए । इधर माननीय लाखोबाद में दीक्षांत समारोह सम्पन्न करा कर वापस आए, उधर सड़क अपने पुरानी स्थिति वापस आने लगी । मानों क्रीम का प्रभाव खत्म होने पर त्वचा का रूखापन फिर से प्रकट होने लगा हो, ब्युटि पार्लर से लौटने के कुछ घंटों बाद सुन्दरी अपने स्वाभाविक रूप में आ गई हो । स्थिति यह हो गई कि माननीय ने जब तक निर्माणनगर एयरपोर्ट से उड़ान भरी तब तक सड़क की स्थिति ज्यों की त्यों हो चुकी थी । एक पंथ दो काज हो गया । माननीय को उनके मान सम्मान के अनुसार सड़क मिली और उनके जाने के बाद जनता को अपनी चिरंतन स्थिति के अनुसार सड़क वापस मिल गई। सड़कों के सुन्दर सुव्यवस्थित होने से उन्हें विदेश में होने का जो सुन्दर अहसास हो रहा था और साथ ही देश की नागरिकता खोने का भय सता रहा था वह समाप्त हो गया और उन्हें लगने लगा कि वे इसी देश के हैं और यह देश उन्हीं का है। इस प्रकार नेताजी के आने के पहले और जाने के बाद स्थिति में पुनर्परिवर्तन हुआ, सबकुछ ज्यों का त्यों हो गया ढ़ाक का पात जैसे उगा था वैसे ही लुप्त हो गया।

मुद्दा संकट

डा० पंकत साहा
एसोसिएट प्रोफेसर हिन्दी–विभाग
खड़गपुर कॉलेज खड़गपुर (पं० बंगाल)
मो०– 9434894190

मजबूत विपक्ष लोकतंत्र की सबसे बड़ी शक्ति होती है और मजबूत मुद्दा विपक्ष की दुर्भाग्य से संप्रति हमारे देश में विपक्ष थोड़ा कमजोर है पर सौभाग्य से विपक्ष के पास मुद्दों का ढ़ेर है, कुछ मुद्दे सरकार और व्यवस्था जनित है और कुछ देव प्रदत्त पर विपक्ष इन संपत्तियों को पाकर गद–गद है, गरीब तो हमारे कवि लेखक आलोचक हो गए हैं । दलित विमर्श, नारी विमर्श जैसे विमर्शों से ऊब जाने के बाद नागार्जुन, अज्ञेय, मुक्तिबोध आदि की जन्म शताब्दी मना लेने के बाद भूमंडलीकरण बाजारवाद पर पूरी शक्ति से प्रहार कर लेने के बाद ये लोग भयंकर मुद्दा–संकट के दौर से गुजर रहा है । कुछ वर्ष पूर्व 'तद्भव' के एक कार्यक्रम में डॉ० नामवर सिंह और उनके भाई श्री काशीनाथ सिंह ने हिन्दी के साहित्यकारों को क्रमश : सत्ता का जोरू और गाँव के सिवान पर मुँह उठाकर भौंकने वाला कुत्ता कहकर हिन्दी के कुछ सक्रिय खाये–पीये–अघाये लेखकों को विमर्श का एक अच्छा मुद्दा थमा दिया था । उसके बाद से हिन्दी का सक्रीय साहित्यकार–समाज 'मुद्दा–संकट' का सामना कर रहे हैं। कोई माने या न माना मैं श्री अरुण कमल को बहुत बड़ा व्यंग्यकार मानता हूँ जिन्होंने " अपना क्या हैं यह इस जीवन में सब कुछ लिया उधार हैं" लिखकर आज के साहित्कारों की पोल–पट्टी खोल दी हैं । इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि कुछ अपवादों को छोड़कर हमारे साहित्यकारों विशेषकर आलोचकों का अपना कोई 'बेस' नहीं है। उन्हें विदेशी 'बेस' ही पसंद है । सिंह बंधुओं द्वारा हिन्दी के साहित्यकारों पर लगाये गए आरोपों का उद्देश्य भले कुछ और हो, पर उनमें निहित सच्चाइयों से इनकार नहीं किया जा सकता । हिन्दी के अधिकांश आलोचक सामंती मिजाज के हैं । नामवर जी में ठाकुर ठसक हैं । वे शुक्ला जी जैसे सूक्ष्म नहीं हैं । अपनी सभा में भीड़ देखकर पाँव छूने वालों ऑटोग्राफ लेने वालों की होड देखकर वे पुलकित हो उठते हैं । जहाँ इनमें कमी होती है, वे कुंठ–ग्रस्त हो जाते हैं और जब वे कुंठित हो जाते हैं, तो कटु सत्य छिप नहीं पाते । क्या यह सच नहीं है कि आजादी के बाद से हिन्दी–साहित्य में रीतिकालीन दरबारी परंपरा नये–नये रूपों में आज भी जीवित है। कुछ अपवादों को छोड़कर हिन्दी के साहित्यकार 'गिव एंड टेक' की नीति पर नहीं चल रहे हैं? हिन्दी की दस–बारह प्रसिद्ध पत्र–पत्रिकाओं के लगातार दस–बारह अंक देखने से यह साफ हो जाएगा कि कौन–कौन लोग छप रहे हैं और वे कौन–सा पहाड़ तोड़ रहे हैं ।

उधर हिन्दी के कुछ आलोचकों को पुरस्कार विमर्श नामक एक मुद्दा मिल गया था । भारत–भूषण पुरस्कार एवं अन्य पुरस्कारों पर वंचितों ने हो–हल्ला मचाना शुरू किया । हलाँकि सबों को पता है कि आज किसी भी क्षेत्र में किसी भी तरह का पुरस्कार प्राप्त करने के लिए योग्यता से अधिक कुशल प्रबंधन की आवश्यकता है।

सच्चाई काशीनाथ जी के बयान में भी हैं ।
प्रेमचन्द की कहानी पूस की रात में एक कुत्ता है– जबडा । वह अत्यंत स्वामिभक्त है। जब उसके स्वामी की खेत में नीलगायें घुस जाती हैं तो वह अपनी संपूर्ण शक्ति से स्वामिभक्ति का परिचय देता है । वह भौंक–भौंककर अपने स्वामी को उठाने का प्रयास करता है। खेत के चारों ओर दौड़–दौड़कर भौंकता है, पर नीलगायों पर आक्रमण नहीं करता । दृढ़ इच्छा रखते हुए भी वह फसलों की रक्षा के लिए भौंकने के अलावा कुछ नहीं करता । क्या समझदार के लिए इतना इशारा काफी नहीं है?

लघुकथा

पहजान

सुनील गज्जाणी

''भले ही तुम मेरी पत्नी होकर मेरा साथ ना दो, मगर मैं ये मानने को कतई तैयार नहीं हूँ कि गजनी फिल्म में आमीर खान जैसा किरदार भी कोई इन्सान हक़ीकत में होता है क्या कि जिसे याद्दास्त सिर्फ पन्द्रह मिनट के लिए रहती है... मैं इस मैगजीन में छपे आर्टिकल की कटु आलोचना करता हूँ। ''डॉक्टर रिजर्व नेचर की मेरी पत्नी न जाने कैसे तुम से इतनी घुल–मिल गई, जो इस आर्टिकल को लेकर तुम्हारा सपोर्ट कर रही है। डॉक्टर, मुझे अस्पताल से छुट्टी कब दे रहे हो, मेरी मेडिकल रिपोर्ट का क्या हुआ। हां, मेरी बीमारी तुम्हारे पकड़ में आयी है या नहीं, या यूंही ही मुझ पर एक्सपेरीमेंट किये जा रहे हो। डॉक्टर लोग सायद मरीज को इन्सान नहीं जानवर समझ कर अपने नित–नये प्रयोग करने की कोशिश करते हैं। हां... तो डॉक्टर.....।

''क्या हुआ चुप क्यों हो गए, क्या कह रहे थे, तो डॉक्टर... बौखलाई हुई पत्नी उसके पास जाती हुई बोली– ''माफ किजिए, मैंने आपको जरा पहचाना नहीं''

पत्नी डबडबाई आँखें लिए अपनी शादी की तश्वीर फिस से पती को दिखाने लगी।

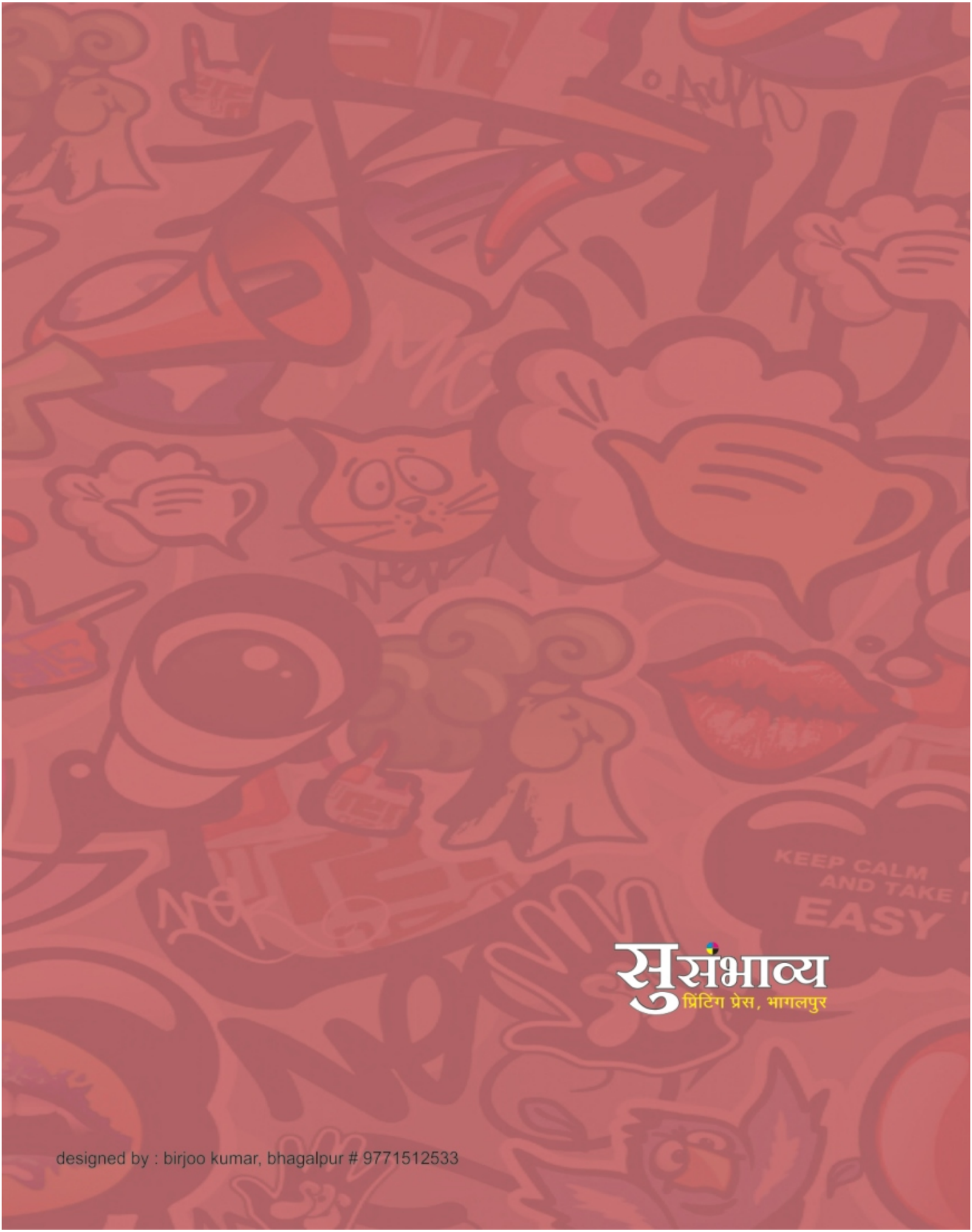

सुसंभाव्य
प्रिंटिंग प्रेस, भागलपुर

designed by : birjoo kumar, bhagalpur # 9771512533